ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लिमिटेड

बनाम

सहायक विक्रयकर आयुक्त और अन्य

[Gwalior Rayon Silk Manufacturing (Weaving) Co. Ltd.

Vs.

The Asstt. Commissioner of Sales Tax and Others]

(21 दिसम्बर, 1973)

(मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे०, न्या० के० के० मैथ्यू, एच० आर० खन्ना, ए० अलगिरिस्वामी और पी० एन० भगवती)

केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (1956 का 74)—धारा 8(2)(ख)—अन्तर्राज्यिक व्यापार के दौरान विक्रय के आवर्त पर उद्ग्रहणीय केन्द्रीय विक्रय कर—ऐसे कर की दर के रूप में उस दर का अपना लिया जाना जो समुचित राज्य की विक्रय कर विधि में स्थानीय विक्रय के कराधान के लिए समय-समय पर नियत की जाए—करापवंचन रोकने तथा विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच विभेद का व्यवहार न होने देने के उद्देश्य से ही संसद् का ऐसा उपबन्ध बनाना—ऐसे उपबन्ध को संसद् द्वारा अपने विधायी कृत्य का परित्याग नहीं कहा जा सकेगा—इस प्रकार का प्रत्यायोजन अत्यधिक नहीं समझा जाएगा और ऐसे उपबन्ध की संवैधानिक विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करेगा।

संविधान—अनुच्छेद 246—केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम की धारा 8(2)(ख) के अधीन उद्गृहीत किए जाने वाले कर की दर को नियत करना—विधायी कृत्य—ऐसे दर को स्वयं नियत करने के बजाय यह नियम बना देना कि समुचित राज्य में माल के क्रय और विक्रय की जो दर लागू की जाए उसी दर पर केन्द्रीय विक्रय कर उद्गृहीत हो—विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन—ऐसा प्रत्यायोजन जो प्रयोजन विशेष से और किसी निश्चित नीति के अनुसरण में किया गया हो अत्यधिक

1973(12) eILR(PAT) SC 1

प्रत्यायोजन होगा—शक्ति के ऐसे प्रत्यायोजन को अपने विधायी कृत्यों का परित्याग नहीं समझा जाएगा।

इन चार अपीलों में अवधारण के लिए यह संक्षिप्त प्रश्न है कि क्या केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 की धारा 8(2)(ख) के उपबन्धों के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है? उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया और इन उपबन्धों की संवैधानिक विधिमान्यता कायम रखी। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रमाणपत्र लेकर ये अपीलें की गई हैं।

अभिनिर्धारित—अधिनियम की धारा 8(2)(ख) सहज तौर पर केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय का अपवंचन रोकने की दृष्टि से अधिनियमित की गई है। अधिनियम में अन्तर्राज्यिक विक्रयों की दशा में तीन प्रतिशत की दर की निम्न दर केवल तब विहित की गई है यदि माल सरकार को अथवा सरकार से भिन्न किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी को बेचा जाता है। ऐसे रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी की दशा में यह अनिवार्य है कि वह माल अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (3) में उल्लिखित प्रकृति का हो। किन्तु अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन कर की ऐसी निम्न दर का फायदा प्राप्त करने के लिए यह भी अनिवार्य है कि माल बेचने वाले व्यौहारी को उस रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा, जिसे माल बेचा जाता है, सम्यकतः भरी हुई और हस्ताक्षरित घोषणा विहित रीति में विहित प्राधिकारी को देनी चाहिए, जिनमें विहित प्राधिकारी से अभिप्राप्त विहित प्ररूप में विहित विशिष्टियां होंगी अथवा यदि माल रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी को न बेच कर सरकार को बेचा जाता है तो सरकार के सम्यकतः प्राधिकृत अधिकारी द्वारा सम्यकतः भरा हुआ और हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र विहित प्ररूप में देना चाहिए। उपधारा (1) के अधीन न आने वाले मामलों में घोषित माल के अन्तर्राज्यिक विक्रय की बाबत किसी व्यौहारी द्वारा संदेय कर वह दर है जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय अथवा क्रय को लागू हों, देखें अधिनियम की धारा 8(2)(क)। (पैरा 3)

इस सम्बन्ध में हमारा यह दृष्टिकोण है कि अधिनियम की धारा 8(2)(ख) के उपबन्धों में स्पष्ट विधायी नीति विद्यमान है। इस बाबत विधि की नीति यह है कि यदि स्थानीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत से कम है तो ऐसी दशा में व्यौहारी को, यदि वह मामला अधिनियम की धारा 8(1) के अन्तर्गत नहीं आता, केन्द्रीय विक्रय कर का संदाय दस प्रतिशत की दर से करना चाहिए। किन्तु यदि सम्बन्धित माल के लिए स्थानीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत

से अधिक हो तो उस दशा में नीति यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर भी वही होगी जो उक्त माल के स्थानीय विक्रय कर की है। इस प्रकार विधि का उद्देश्य यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर किसी भी दशा में प्रश्नगत माल के लिए स्थानीय विक्रय कर की दर से कम न हो यद्यपि यह दर स्थानीय दर से उस दशा में अधिक हो जाए जब वह दस प्रतिशत से कम हो। उदाहरण के लिए यदि अघोषित माल के लिए समुचित राज्य में कर की स्थानीय दर छह प्रतिशत हो तो ऐसी दशा में उस व्यौहारी को, जिसका मामला अधिनियम की धारा 8(1) के अन्तर्गत नहीं आता, दस प्रतिशत की दर पर केन्द्रीय विक्रय कर का संदाय करना होगा। किन्तु उस दशा में जिसमें ऐसे माल के स्थानीय विक्रय कर की दर बारह प्रतिशत हो तो केन्द्रीय विक्रय कर की दर भी बारह प्रतिशत होगी क्योंकि उससे अन्यथा यदि केन्द्रीय विक्रय कर की दर केवल दस प्रतिशत होती तो अरजिस्ट्रीकृत व्यौहारी, जो अन्तर्राज्यिक व्यापार के अनुक्रम में माल खरीदता है वह अन्तर्राज्यिक क्रेता की अपेक्षा बेहतर स्थिति में होता और व्यौहारियों को अन्तर्राज्यिक व्यापार के अनुक्रम में अरजिस्ट्रीकृत क्रेताओं को माल बेचने से रोकने के लिए कोई हतोत्साहक बात नहीं होती। प्रकटतः विधि का उद्देश्य अन्तर्राज्यिक विक्रयों का अरजिस्ट्रीकृत व्यौहारियों को किया जाना प्रतिरुद्ध करना है क्योंकि ऐसे अन्तर्राज्यिक विक्रयों से कर का अपवंचन सुकर हो जाएगा। (पैरा 4)

धारा 8(2)(ख) के अधीन अधिकतम दर नियत करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि स्थानीय विक्रय कर की दर हर राज्य में अलग-अलग होती है। स्थानीय विक्रय कर की दर को राज्य विधानमण्डलों द्वारा समय-समय पर बदला भी जा सकता है। स्थानीय विक्रय कर की अधिकतम दर नियत करने के लिए संसद् सक्षम नहीं है। स्थानीय विक्रय कर की दर नियत करना आवश्यक रूप से राज्य विधानमण्डल का विषय है और उस विषय में संसद् को कोई नियंत्रण प्राप्त नहीं है। यदि स्थानीय विक्रय कर की दर किसी विशेष सीमा से अधिक है तो संसद् को आवश्यक रूप से ऐसे कर की दर को स्थानीय विक्रय कर की दर के साथ सम्बद्ध करना होता है, यदि यह केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय के अपवंचन का निवारण करना चाहती है। (पैरा 4)

किसी विशेष राज्य में लागू होने वाले केन्द्रीय विक्रय कर के प्रयोजनार्थ स्थानीय विक्रय कर की दर के अपनाए जाने से यह दर्शित नहीं होता है कि संसद् ने अपने विधायी कृत्य का किसी प्रकार अधित्याग किया है। जहां संसद् की किसी विधि में यह उपबन्ध हो कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत अथवा स्थानीय विक्रय कर की दर, इनमें से जो भी अधिक हो, वही होनी

चाहिए तो वहां ऐसी विधि में एक निश्चित विधायी नीति समझी जा सकती है जो नीति यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर किसी भी दशा में स्थानीय विक्रय कर की दर से कम नहीं होगी। ऐसी दशा में, संसद् द्वारा विरचित विधि में केन्द्रीय विक्रय कर की अधिकतम दर की यथार्थ मात्रा का उल्लेख करना सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसी दर स्थानीय विक्रय कर की दर के साथ सम्बद्ध है जो राज्य विधानमण्डलों द्वारा विहित की जाती है। ऐसी विधि बनाने के सम्बन्ध में संसद् के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने अस्तित्व को ही भुला दिया है। इसके प्रतिकूल संसद् ऐसी विधि बनाकर अपनी विधायी नीति प्रभावी करती है जिसके अनुसार कतिपय आकस्मिकताओं में केन्द्रीय विक्रय कर की दर समुचित राज्य में स्थानीय विक्रय कर की दर से कम नहीं होनी चाहिए। धारा 8(2)(ख) में अधित्याग या अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष नहीं है। (पैरा 5)

यह कथन कर दें कि इस न्यायालय ने दो मामलों में उस कानून की विधिमान्यता को कायम रखा है जिसके द्वारा विधानमण्डल ने दरों का नियत किया जाना दूसरे निकाय के लिए छोड़ दिया था। किन्तु यह इस नियम के अधीन किया गया था कि विधानमण्डल को ऐसे नियतन के लिए मार्गदर्शन का उपबन्ध करना चाहिए। (पैरा 9)

बहुत सी नज़ीरों में इस न्यायालय ने जो दृष्टिकोण अपनाया है वह यह है कि दूसरे प्राधिकारी को अधीनस्थ अथवा आनुषंगिक विधान बनाने के लिए शक्ति प्रदत्त करते समय विधानमण्डल को सम्बद्ध प्राधिकारी के मार्गदर्शन के लिए नीति, सिद्धान्त अथवा मानक अवश्य अधिकथित करना चाहिए। उक्त दृष्टिकोण की पुष्टि सात न्यायाधीशों से गठित इस न्यायालय के न्यायपीठों द्वारा की जा चुकी है। हमारे ध्यान में ऐसी कोई अकाट्य बात नहीं लाई गई है जो उक्त दृष्टिकोण से विचलन को न्यायोचित ठहराए। (पैरा 22)

'ऐबडिकेशन' शब्द का सही अभिप्राय क्या है और यदि विधानमण्डल उस विधि को निरस्त करने का प्राधिकार अपने पास रखता है जिसके द्वारा अधीनस्थ विधान बनाने की असरणीबद्ध (अनकैनलाइज्ड) और मार्गदर्शन विहीन शक्ति दूसरे निकाय को प्रदत्त की जाती है तो क्या यह "ऐबडिकेशन" शब्द का उचित प्रयोग है ऐसे प्रश्न हैं जो अर्थ विषयक बारीकियों में रुचि रखने वाले साहित्य के अध्येता व्यक्तियों के लिए कुछ रोचक हो सकते हैं, हमारा यह दृष्टिकोण है कि वे प्रश्न इस सिद्धान्त में कोई दोष नहीं निकाले सकते हैं, जो इस न्यायालय की बहुत सी नज़ीरों द्वारा सुस्थापित हो चुका है कि विधानमण्डल

को उस प्राधिकारी के लिए मार्गदर्शन, सिद्धान्त अथवा नीति अवश्य अधिकथित करनी चाहिए जिसे वह अधीनस्थ विधान बनाने की शक्ति सौंपता है। (पैरा 27)

(मुख्य न्यायाधिपति रे और न्यायाधिपति मैथ्यू के अनुसार)

प्रत्यायोजन एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय से दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय को शक्ति का पूर्णतः दिया जाना अथवा अन्तरण नहीं है। प्रत्यायोजन को किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय द्वारा उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय में निहित शक्तियों का प्रयोग दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय को सौंपे जाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें प्रतिसंहरण अथवा संशोधन की सम्पूर्ण शक्ति दाता अथवा प्रत्यायोजक में रहती है। इसकी विवक्षाओं को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि इस उपधारणा से कि प्रत्यायोजन में शक्ति का पूर्ण अधित्याग अथवा निराकरण अन्तर्वलित है अथवा अन्तर्वलित हो सकता है दुर्भाग्यवश बहुत ही भ्रान्तिपूर्ण विचार पैदा हो गए हैं। परिभाषा हो जाने पर इस बात का डर नहीं रहता है। प्रत्यायोजन में बहुधा किसी दूसरे को वैवेकिक प्राधिकार का दिया जाना अन्तर्वलित होता है किन्तु ऐसा प्राधिकार शुद्धतः व्युत्पत्तिक (डेरीवेटिव) है। अन्तिम शक्ति सदैव प्रत्यायोजक में रहती है और उसका कभी भी परित्याग नहीं किया जाता है। (पैरा 36)

यदि प्रत्यायोजन के सिद्धान्त की इस आवश्यक प्रकृति को ध्यान में रखा जाए तो विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन और अधित्याग के सिद्धान्त के प्रश्न पर प्रमुख विनिश्चयों के सिद्धान्त को समझना कठिन नहीं है। (पैरा 38)

संसद् ने अधिनियम की धारा 8(2)(ख) में विनिर्दिष्ट प्रकार के अन्तर्राज्यिक (इण्टरस्टेट) विक्रयों पर कर की दर अन्तःराज्यिक (इण्ट्रास्टेट) विक्रयों मद्दे समुचित राज्य विधानमण्डल द्वारा नियत दर के अनुसार एक विशेष प्रयोजन से अर्थात् अन्तर्राज्यिक विक्रयों में कर के अपवंचन को रोकने और एक राज्य और किन्हीं दूसरे राज्यों के निवासियों के बीच प्रभेद को रोकने के लिए नियत की थी। संसद् का यह विचार था कि जब तक राज्यों द्वारा समय-समय पर नियत की गई दर को उस उपखण्ड में विनिर्दिष्ट प्रकार के अन्तर्राज्यिक विक्रयों के लिए नहीं अपनाया जाता तब तक अन्तर्राज्यिक विक्रयों में कर का अपवंचन होगा और साथ ही विभेद भी होगा। और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संसद्, स्थानीय विक्रयों की बाबत समुचित विधानमण्डल द्वारा समय-समय पर नियत की जाने वाली दर समाविष्ट करने से अन्यथा दर नियत नहीं कर सकती थी। (पैरा 69)

इस बाबत कोई सन्देह नहीं हो सकता कि संसद् अन्तर्राज्यिक विक्रयों

1973(12) eILR(PAT) SC 1

मद्दे समुचित राज्य विधानमण्डल द्वारा नियत की गई कर की ऊंची दर अपना कर, धारा 8(2)(ख) के उपबन्धों को निरस्त कर सकती है। यदि संसद् उपबन्ध को निरस्त कर सकती है तो इस विषय में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती कि संसद् ने अपने विधायी कृत्य का अधित्याग किया है। दर नियत करने के मामले में संसद् अपना नियन्त्रण यथावत् रखती है। दूसरे शब्दों में, जब तक संसद् राज्य विधानमण्डलों द्वारा नियत, कर की उच्चतर दर अपना कर धारा 8(2) (ख) के उपबन्धों को निरस्त कर सकती है, तब तक यह अपने विधायी कृत्य का अधित्याग नहीं करती है।।(पैरा 69)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1972]	(1972) 2 एस० सी० आर० 141 : **सीताराम विशम्भर दयाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (Sita Ram Bishambher Dayal and Others *Vs.* State of Uttar Pradesh and Others);	21 और 35
[1968]	(1968) 3 एस० सी० आर० 251 = [1968] 1 उम० नि० प० 826 : **दिल्ली म्यूनिसिपल कारपोरेशन** बनाम **बिरला कॉटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स, दिल्ली और एक अन्य** (Municipal Corporation of Delhi *Vs.* Birla Cotton, Spinning and Weaving Mills Delhi and Another);	10, 16
[1967]	ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1895 = [1967] 3 एस० सी० आर० 557 : **देवी दास गोपाल कृष्ण** बनाम **पंजाब राज्य** (Devi Das Gopal Krishan *Vs.* State of Punjab);	15, 21
[1967]	(1967) ए० सी० 141 : **काब एण्ड कम्पनी लिमिटेड और अन्य** बनाम **नारमन ईगर्ट क्राप** (Cobb and Co. Ltd. & Others *Vs.* Norman Eggert Kropp);	26

[1966] (1966) 1 एस० सी० आर० 950 :
म्युनिसिपल बोर्ड, हापुड़ बनाम रघुवेन्द्र कृपाल (Municipal Board, Hapur *Vs.* Raghuvendra Kripal); 32

[1965] (1965) 2 एस० सी० आर० 477 :
कलकत्ता नगर-निगम और एक अन्य बनाम लिबर्टी सिनेमा (Corporation of Calcutta and Another *Vs.* Liberty Cinema); 9

[1961] (1961) 1 एस० सी० आर० 341 :
वसन्त लाल मगनभाई संजनवाला बनाम मुम्बई राज्य और अन्य (Vasantlal Maganbhai Sanjanwala *Vs.* The State of Bombay and Others); 20

[1959] (1959) एस० सी० आर० 427 :
पण्डित बनारसी दास भनोट बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (Pandit Banarsi Das Bhanot *Vs.* The State of Madhya Pradesh and Others); 9, 19

[1956] (1956) एस० सी० आर० 137 :
अटर्नी जनरल ऑण्टारियो बनाम स्कॉट (A. G. Ontario *Vs.* Scott); 64

[1955] (1955) 1 एस० सी० आर० 380 :
हरिशंकर बागला बनाम मध्य प्रदेश राज्य (Harishankar Bagla *Vs.* The State of Madhya Pradesh); 18

[1952] (1952) एस० सी० आर० 435 :
काठी रैनिंग रावत बनाम सौराष्ट्र राज्य (Kathi Raning Rawat *Vs.* State of Saurashtra); 47

[1951] (1951) एस० सी० आर० 747 :
दिल्ली लॉज ऐक्ट, 1912 वाले मामले में (In re the Delhi Laws Act, 1912); 17 और 47

1973(12) eILR(PAT) SC

[1950]	(1950) 4 डी० एल० आर० 369 : अटर्नी जनरल नोवास्कोशिया बनाम अटर्नी जनरल कनाडा नोवास्कोशिया इण्टर डेलिगेशन वाला मामला [A.G.N.S. *Vs.* A. G. Can (Nova Scotia Inter delegation Case)];	62
[1947]	334 यू० एस० 742 : जैकब लियटर बनाम युनाइटेड स्टेट्स (Jacob Lichter *Vs.* United States);	49
[1938]	(1938) ए० सी० 708 (प्रिवी कौंसिल) : शैनन बनाम लोअर मेनलैण्ड डेरी प्राडक्ट्स बोर्ड (Shannon *Vs.* Lower Mainland Dairy Products Board);	44
[1934]	293 यू० एस० 388 : पनामा रिफाइनिंग कम्पनी बनाम रियन (Panama Refining Co. *Vs.* Ryan);	52
[1931]	(1931) 46 सी० एल० आर० 73 : विक्टोरियन स्टीवडोरिंग जनरल कॉण्ट्रेक्टिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम डिगनन (Victorian Stevendoring and General Contracting Co. Pvt. Ltd. *Vs.* Dignan);	50
[1931]	(1931) 44 सी० एल० आर० 492 : हुड्डार्ट पार्कर लिमिटेड बनाम कामनवैल्थ (Huddart Parker Ltd. *Vs.* Commonwealth);	50
[1921]	(1921) 29 सी० एल० आर 329 : रोश बनाम क्रोनहाइमर (Roche *Vs.* Kronheimer);	50
[1919]	(1919) ए० सी० 935 : इनिशियेटिव एण्ड रिफ्रेण्डम ऐक्ट वाले मामले में (In re Initiative and Referendum Act);	43

[1890] एल० आर० (1890) 25 क्यू० बी० डी० 391 :
हथ बनाम क्लार्क (Huth *Vs.* Clarke); 37

[1883] एल० आर० (1883) 9 ए० सी० 117 :
हौज बनाम क्वीन (Hodge *Vs.* Queen); 39

[1878] (1878) 5 इण्डियन अपील्स 178 :
क्वीन बनाम बूरा (Queen *Vs.* Burah). 46 53
57 एस० सी० आर० 150 :
ग्रे वाले मामले में (In re Gray); 42

अनुमोदित निर्णय

[1973] 31 एस० टी० सी० 261 :
रैलिस इण्डिया लिमिटेड बनाम आर० एस० जोशी, विक्रय कर अधिकारी (Rallis India Ltd. *Vs.* R. S. Joshi, Sales-Tax Officer); 71

[1972] 29 एस० टी० सी० 585 :
टेक चन्द दौलत राय बनाम एक्साइज़ एण्ड टैक्सेशन आफिसर, फीरोजपुर और अन्य (Tek Chand Daulat Rai *Vs.* The Excise and Taxation Officer, Ferozepore and Others); 71

[1968] (1968) 3 एस० सी० आर० 829 :
मद्रास राज्य बनाम एन० के० नटराज मुदालियर (State of Madras *Vs.* N. K. Nataraj Mudaliar). 4

प्रभेदित निर्णय

[1967] ए० आई० आर० (1967) एस० सी० 1895 = (1967) 2 एस० सी० आर० 650 :
बी० शमा राव बनाम पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र (B. Shama Rao *Vs.* The Union Territory of Pondicherry); 6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1973 की सिविल अपील संख्या 212-215.

1968 के प्रकीर्ण पिटीशन संख्या 191, 1970 के संख्या 30, 1972 के संख्या 63 और 64 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर, के तारीख 29 अगस्त, 1972 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील संख्या 212-215 में)	सर्वश्री ए० के० सेन, आर० वी० पटेल, विश्वरूप गुप्ता, आर० एन० झुनझुनवाला और वी० के० खेतान
प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से (सिविल अपील संख्या 212-215 में)	श्री आई० एन० श्रॉफ
प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से (1973 की सिविल अपील संख्या 212 में)	सर्वश्री बी० सेन और एस० पी० नायर
प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से (सिविल अपील संख्या 213-215 में)	श्री एस० पी० नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एच० आर० खन्ना ने दिया।

न्यायाधिपति खन्ना—

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रमाणपत्र लेकर की गई इन चार अपीलों में अवधारण के लिए यह संक्षिप्त प्रश्न उत्पन्न हुआ है कि क्या केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम संख्या 54, जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 8 (2) (ख) के उपबन्धों में अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष हैं। उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया और इन उपबन्धों की संवैधानिक विधिमान्यता कायम रखी।

2. अधिनियम की धारा 8 की उपधाराएं (1), (2) और (4) इस प्रकार हैं—

> (1) हर व्यौहारी जो अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में—
>
> (क) कोई माल सरकार को बेचेगा; या
>
> (ख) उपधारा (3) में निर्दिष्ट वर्णन का माल सरकार से भिन्न किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी को बेचेगा;

इस अधिनियम के अधीन कर देने का ज़िम्मेदार होगा जो उसके आवर्त का तीन प्रतिशत होगा ।

(2) किसी व्यौहारी द्वारा अपने आवर्त पर संदेय कर वहां तक जहां तक कि आवर्त या उसका कोई भाग उपधारा (1) के अन्तर्गत न आने वाले अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में माल के विक्रय से सम्बद्ध है—

(क) घोषित माल की दशा में, उस दर से जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय या क्रय को लागू हो, परिकलित किया जाएगा; तथा

(ख) घोषित माल से भिन्न माल की दशा में, दस प्रतिशत की दर से या उस दर से जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय या क्रय को लागू हो, इन दोनों में से जो भी अधिक हो परिकलित किया जाएगा;

और ऐसे परिकलन के प्रयोजन के लिए ऐसे व्यौहारी के बारे में, इस बात के होते हुए भी कि वह समुचित राज्य की विक्रय-कर विधि के अधीन तथ्यत: इस प्रकार जिम्मेदार नहीं है, यह समझा जाएगा कि उस विधि के अधीन कर देने का जिम्मेदार व्यौहारी है ।

× × × ×

(4) उपधारा (1) के उपबन्ध अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के अनुक्रम में किसी विक्रय को तब तक लागू नहीं होंगे जब तक कि माल का विक्रय करने वाला व्यौहारी—

(क) उस रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा, जिसे माल बेचा गया है, विहित प्राधिकारी से अभिप्राप्त किए गए विहित प्ररूप में, सम्यक् रूप से भरी हुई और हस्ताक्षरित घोषणा जिसमें विहित विवरण अन्तर्विष्ट हों, या

(ख) यदि माल ऐसी सरकार को, जो रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी नहीं है बेचा गया है तो उस सरकार के सम्यक् रूप से प्राधिकृत अधिकारी द्वारा विहित प्ररूप में सम्यक् रूप से भरा हुआ और हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र,

विहित प्राधिकारी को विहित रीति से न दे दे ।"

1973(12) eILR(PAT) SC 1

3. अपीलार्थियों की ओर से यह तर्क दिया गया है कि कर की दर नियत किया जाना एक विधायी कृत्य है और क्योंकि संसद् ने अधिनियम की धारा 8 (2) (ख) के अधीन केन्द्रीय विक्रय कर की दर नियत नहीं की है बल्कि समुचित राज्य के भीतर माल के विक्रय अथवा क्रय को लागू दर उस दशा में अपना ली है जब ऐसी दर दस प्रतिशत से अधिक हो तो संसद् ने अपने विधायी कृत्य का अधित्याग कर दिया है। परिणामतः, उक्त उपबन्ध के बारे में यह कहा गया है कि वह संवैधानिक रूप से इसलिए अविधिमान्य है क्योंकि उसमें विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन है। हमारी राय में यह दलील सुआधारित नहीं है। अधिनियम की धारा 8(2) (ख) सहज तौर पर केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय का अपवंचन रोकने की दृष्टि से अधिनियमित की गई है। अधिनियम में अन्तर्राज्यिक विक्रयों की दशा में तीन प्रतिशत की कर की निम्न दर केवल तब विहित की गई है यदि माल सरकार को अथवा सरकार से भिन्न किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी को बेचा जाता है। ऐसे रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी की दशा में यह अनिवार्य है कि वह माल अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (3) में उल्लिखित प्रकृति का हो। किन्तु अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन कर की ऐसी निम्न दर का फायदा प्राप्त करने के लिए यह भी अनिवार्य है कि माल बेचने वाले व्यौहारी को उस रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा, जिसे माल बेचा जाता है, सम्यकतः भरी हुई और हस्ताक्षरित घोषणा विहित रीति में विहित प्राधिकारी को देनी चाहिए, जिसमें विहित प्राधिकारी से अभिप्राप्त विहित प्ररूप में विहित विशिष्टियां होंगी अथवा यदि माल रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी को न बेच कर सरकार को बेचा जाता है तो सरकार के सम्यक्तः प्राधिकृत अधिकारी द्वारा सम्यकतः भरा हुआ और हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र विहित प्ररूप में देना चाहिए। उपधारा (1) के अधीन न आने वाले मामलों में घोषित माल के अन्तर्राज्यिक विक्रय की बाबत किसी व्यौहारी द्वारा संदेय कर वह दर है जो समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय अथवा क्रय को लागू हो, [अधिनियम की धारा 8(2) (क) देखिए] जहां तक घोषित माल से भिन्न माल का सम्बन्ध है, धारा 8(2) (ख) में यह उपबन्ध है कि अन्तर्राज्यिक व्यापार अथवा वाणिज्य के अनुक्रम में ऐसे माल के विक्रय पर किसी व्यौहारी द्वारा संदेय कर दस प्रतिशत की दर पर अथवा समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय अथवा क्रय को लागू होने वाली दर पर, इनमें से जो भी अधिक हो, परिकलित किया जाएगा।

4. जिस प्रश्न से हमारा सरोकार है वह यह है कि क्या संसद् ने स्वयं दर नियत न करके और समुचित राज्य के भीतर माल के विक्रय या क्रय को लागू होने वाली दर को अपना कर कोई विधायी नीति अधिकथित नहीं की है

और अपने विधायी कृत्य का अधित्याग कर दिया है। इस सम्बन्ध में हमारा यह दृष्टिकोण है कि अधिनियम की धारा 8(2) (ख) के उपबन्धों में स्पष्ट विधायी नीति विद्यमान है। इस बाबत विधि की नीति यह है कि यदि स्थानीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत से कम है तो ऐसी दशा में व्यौहारी को, यदि वह मामला अधिनियम की धारा 8(1) के अन्तर्गत नहीं आता, केन्द्रीय विक्रय कर का संदाय दस प्रतिशत की दर से करना चाहिए। किन्तु यदि सम्बन्धित माल के लिए स्थानीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत से अधिक हो तो उस दशा में नीति यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर भी वही होगी जो उक्त माल के स्थानीय विक्रय कर की है। इस प्रकार विधि का उद्देश्य यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर किसी भी दशा में प्रश्नगत माल के लिए स्थानीय विक्रय कर की दर से कम न हो यद्यपि यह दर स्थानीय दर से उस दशा में अधिक हो जाए जब वह दस प्रतिशत से कम हो। उदाहरण के लिए, यदि अघोषित माल के लिए समुचित राज्य में कर की स्थानीय दर छह प्रतिशत हो तो ऐसी दशा में उस व्यौहारी को, जिसका मामला अधिनियम की धारा 8(1) के अन्तर्गत नहीं आता, दस प्रतिशत की दर पर केन्द्रीय विक्रय कर का संदाय करना होगा। किन्तु उस दशा में जिसमें ऐसे माल के स्थानीय विक्रय कर की दर बारह प्रतिशत हो तो केन्द्रीय विक्रय कर की दर भी बारह प्रतिशत होगी क्योंकि अन्यथा यदि केन्द्रीय विक्रय कर की दर केवल दस प्रतिशत होती तो अरजिस्ट्रीकृत व्यौहारी जो अन्तर्राज्यिक व्यापार के अनुक्रम में माल खरीदता है वह अन्तर्राज्यिक क्रेता की अपेक्षा बेहतर स्थिति में हुआ होता और व्यौहारियों को अन्तर्राज्यिक व्यापार के अनुक्रम में अरजिस्ट्रीकृत क्रेताओं को माल बेचने से रोकने के लिए कोई हतोत्साहक बात नहीं होती। प्रकटतः विधि का उद्देश्य अन्तर्राज्यिक विक्रयों का अरजिस्ट्रीकृत व्यौहारियों को किया जाना प्रतिरुद्ध करना है क्योंकि ऐसे अन्तर्राज्यिक विक्रयों से कर का अपवंचन सुकर हो जाएगा। धारा 8(2) (ख) के अधीन अधिकतम दर नियत करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि स्थानीय विक्रय कर की दर हर राज्य में अलग-अलग होती है। स्थानीय विक्रय कर की दर को राज्य विधानमण्डलों द्वारा समय-समय पर बदला भी जा सकता है। स्थानीय विक्रय कर की अधिकतम दर नियत करने के लिए संसद् सक्षम नहीं है। स्थानीय विक्रय कर की दर नियत करना आवश्यक रूप से राज्य विधानमण्डल का विषय है और उस विषय में संसद् को कोई नियंत्रण प्राप्त नहीं है। यदि स्थानीय विक्रय कर की दर किसी विशेष सीमा से अधिक है तो संसद् को आवश्यक रूप से ऐसे कर की दर को स्थानीय विक्रय कर की दर के साथ सम्बद्ध करना होता है, यदि यह केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय के अपवंचन का

1973(12) eILR(PAT) SC 1

निवारण करना चाहती है। **मद्रास राज्य** बनाम **एन० के० नटराज मुदालियर**[1] वाले मामले में अधिनियम की धारा 8(2) (ख) के उपबन्धों पर विचार करते हुए न्यायाधिपति हेगडे ने यह मत व्यक्त किया—

> "इसके पश्चात् हम धारा 8(2) के खण्ड (ख) पर आते हैं जो घोषित माल से भिन्न माल के बारे में है। सुसंगत समय पर विधि यह थी कि कर आवर्त के सात प्रतिशत की दर पर, अथवा समुचित राज्य के भीतर ऐसे माल के विक्रय अथवा क्रय को लागू होने वाली दर पर, इनमें से जो भी अधिक हो, परिकलित किया जाएगा। जैसा कि कराधान जांच समिति की रिपोर्ट से पता चलता है इस उपबन्ध का मुख्य कारण यावत् सम्भव रूप से विक्रय कर के अपवंचन का निवारण करना था। संसद् इस बात की इच्छुक थी कि अन्तर्राज्यिक व्यापार रजिस्ट्रीकृत व्यौहारियों के माध्यम से किया जाए जिनके ऊपर समुचित सरकार का काफी नियन्त्रण होता है। उनके लिए कर का अपवंचन करना बहुत आसान नहीं है। जिस अध्युपाय का आशय कर के अपवंचन को रोकना है वह निस्सन्देह रूप से विधिमान्य अध्युपाय है। इसके अतिरिक्त धारा 8(2) के अन्तर्गत आने वाले व्यौहारियों के माध्यम से किया जाने वाला अन्तर्राज्यिक व्यापार ऐसी स्थिति में बहुत कम हो जाएगा यह सुनिश्चित करना लोक हित में है कि वे, व्यापार की स्वतन्त्रता के वेश में कर का अपवंचन न करने पाएं। यदि जिस विक्रय कर का वे संदाय करते हैं वह इतना अधिक है अथवा अन्तर्राज्यिक विक्रय कर से भी अधिक है तो उन्हें अपने आप को रजिस्ट्रीकृत कराने और विधिसम्मत रूप से शोध्य कर को देने पर विवश होना पड़ेगा। अन्तर्राज्यिक व्यापार पर इस उपबन्ध का प्रभाव बहुत ही नगण्य है किन्तु साथ ही यह कर अपवंचन के विरुद्ध प्रभावी सुरक्षोपाय है।"

5. किसी विशेष राज्य में लागू होने वाले केन्द्रीय विक्रय कर के प्रयोजनार्थ स्थानीय विक्रय कर की दर के अपनाए जाने से यह दर्शित नहीं होता है कि संसद् ने अपने विधायी कृत्य का किसी प्रकार अधित्याग किया है। जहां संसद् की किसी विधि में यह उपबन्ध हो कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर दस प्रतिशत अथवा स्थानीय विक्रय कर की दर, इनमें से जो भी अधिक हो, वही होनी चाहिए तो वहां ऐसी विधि में एक निश्चित विधायी नीति समझी जा सकती है जो नीति यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर किसी भी दशा में स्थानीय विक्रय

---

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 829.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

कर की दर से कम नहीं होगी। ऐसी दशा में, जैसा कि पहले ऊपर कहा जा चुका है, संसद् द्वारा विरचित विधि में केन्द्रीय विक्रय कर की अधिकतम दर की यथार्थ मात्रा का उल्लेख करना सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसी दर स्थानीय विक्रय कर की दर के साथ सम्बद्ध है जो राज्य विधानमण्डलों द्वारा विहित की जाती है। ऐसी विधि बनाने के सम्बन्ध में संसद् के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने अस्तित्व को ही भुला दिया है। इससे प्रतिकूल संसद् ऐसी विधि बना कर अपनी विधायी नीति प्रभावी करती है जिसके अनुसार कतिपय आकस्मिकताओं में केन्द्रीय विक्रय कर की दर समुचित राज्य में की स्थानीय विक्रय कर की दर से कम नहीं होनी चाहिए। संसद् द्वारा विरचित उपर्युक्त उपबन्ध वाली विधि के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें विधायी कृत्य के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है। इसके प्रतिकूल उपर्युक्त विधि में विधानमण्डल के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अर्थात् केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय के अपवंचन को रोकने और बच निकलने के सम्भावित रास्ते बंद करने के आवश्यक उपबन्ध हैं।

6. हमारी यह राय है कि जो विधि **बी० शमा राव** बनाम **पाण्डिचेरी संघ राज्यक्षेत्र**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने अवैध घोषित की थी और जो केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम की धारा 8 (2) (ख) में है, दोनों के अधिनियम में बड़ा अन्तर है। **शमा राव वाले मामले में**[1] पाण्डिचेरी संघ राज्यक्षेत्र की विधान सभा ने पाण्डिचेरी जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट (पाण्डिचेरी सामान्य विक्रय कर अधिनियम) पारित किया था जो तारीख 30 जून, 1965 को प्रकाशित हुआ था। उक्त अधिनियम की धारा 1(2) में यह उपबन्ध था कि यह ऐसी तारीख को प्रवृत्त होगा जिसे पाण्डिचेरी सरकार अधिसूचना द्वारा नियत करे और धारा 2(1) में यह उपबन्ध था कि मद्रास जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959, जो पाण्डिचेरी ऐक्ट के प्रारम्भ होने के ठीक पूर्व मद्रास राज्य में प्रवृत्त था, कतिपय उपान्तरों के अधीन पाण्डिचेरी पर विस्तारित किया जाएगा। पाण्डिचेरी सरकार ने 1 मार्च, 1966 को एक अधिसूचना निकाली जिसमें पाण्डिचेरी ऐक्ट के प्रारम्भ होने की तारीख 1 अप्रैल, 1966 नियत की गई थी। अधिसूचना जारी करने से पूर्व मद्रास विधानमण्डल ने मद्रास ऐक्ट का संशोधन कर दिया था और परिणामतः तारीख 1 अप्रैल, 1966 तक यथा संशोधित मद्रास ऐक्ट ही पाण्डिचेरी में प्रवृत्त किया गया था। इसके उपरान्त पाण्डिचेरी ऐक्ट की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए एक पिटीशन फाइल किया गया था। उस पिटीशन के लम्बित रहने के दौरान पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने 1966 का संशोधन अधिनियम संख्या 13

[1] ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1895=(1967) 2 एस० सी० आर० 650.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

पारित कर दिया था जिसके द्वारा मूल अधिनियम की धारा 1(2) को इस प्रकार संशोधित किया गया था कि उसे इस प्रकार पढ़ा जाए कि पश्चात्कथित ऐक्ट तारीख 1 अप्रैल, 1966 को प्रवृत्त होगा और यह कि उस ऐक्ट के अधीन की गई सभी कार्यवाहियों और कार्रवाइयों को विधिमान्य समझा जाएगा मानो यथा संशोधित मूल ऐक्ट सभी सुसंगत समय पर प्रवृत्त रहा हो। इस न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया था कि 1965 वाला ऐक्ट शून्य और आदि से ही अविधिमान्य था और 1966 वाले अमेण्डमेण्ट ऐक्ट (संशोधन अधिनियम) द्वारा उसमें जीवन का संचय फिर से नहीं किया जा सकता था। न्यायालय के अनुसार पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने न केवल मद्रास ऐक्ट को, जैसा कि वह उस समय था जब इसने मूल ऐक्ट पारित किया, अपनाया ही बल्कि तथ्यत: इसने यह भी अधिनियमित किया कि यदि मद्रास विधानमण्डल अपने अधिनियम को पाण्डिचेरी पर उसके विस्तारण की अधिसूचना के पूर्व संशोधित करता है तो संशोधित अधिनियम ही लागू होगा। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस प्रक्रम पर विधानमण्डल यह नहीं सोच सकता था कि मद्रास ऐक्ट संशोधित नहीं किया जाएगा और न ही वह निश्चित रूप से यह जान सकता था कि कौन से संशोधन पारित हो जाएंगे, वे व्यापक होंगे या नहीं अथवा पाण्डिचेरी के लिए उपयुक्त होंगे या न होंगे। न्यायालय की राय में परिणाम यह था कि पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने संशोधित अधिनियम स्वीकार कर लिया यद्यपि वह इस बात से अवगत नहीं था और न हो सकता था कि संशोधित अधिनियम के उपबन्ध क्या हैं। इन परिस्थितियों में, न्यायालय के अनुसार, पाण्डिचेरी विधान सभा ने विक्रय कर विधान के विषय में मद्रास विधानमण्डल के सामने सम्पूर्ण आत्म समर्पण किया था।

7. उपरोक्त (कथन) से यह प्रकट होता है कि पाण्डिचेरी ऐक्ट को अपास्त करने में बहुमत वाले न्यायाधीशों ने जिस कारण को महत्व दिया था वह पाण्डिचेरी विधानमण्डल द्वारा विक्रय कर विधान के विषय में मद्रास विधानमण्डल के पक्ष में पूर्ण आत्म समर्पण था। प्रस्तुत मामले में ऐसा कोई आत्म समर्पण नहीं है क्योंकि संसद् ने केन्द्रीय विक्रय कर के प्रयोजनार्थ स्थानीय विक्रय कर की दर को किसी विशेष बात के लिए अपनाया है। वास्तव में, जैसा कि इससे पूर्व उल्लिखित किया गया है, स्थानीय विक्रय कर का अपनाया जाना, अरजिस्ट्रीकृत व्यौहारियों को किए जाने वाले अन्तर्राज्यिक विक्रय को हतोत्साहित करके केन्द्रीय विक्रय कर के संदाय के अपवंचन को रोकने की इच्छा से प्रेरित विधायी नीति के अनुसरण में है। पाण्डिचेरी ऐक्ट में, जिसे इस न्यायालय ने अपास्त किया था, ऐसी किसी भी नीति का कोई चिह्न नहीं दिखाई देती है।

1973(12) eILR(PAT) SC 1

8. दूसरा भेद, जोकि यद्यपि सारवान् नहीं है, यह है कि पाण्डिचेरी वाले मामले में पश्चात्वर्ती संशोधनों सहित मद्रास ऐक्ट के उपबन्धों को ऐसे क्षेत्र में लागू किया गया था जो पाण्डिचेरी के संघ राज्य-क्षेत्र में था और मद्रास राज्य में नहीं था। उसके विपरीत संसद् ने केवल उस राज्य के राज्यक्षेत्र के लिए, जिसके लिए उस राज्य के विधानमण्डल ने विक्रय कर की दर नियत की थी, केन्द्रीय विक्रय कर की दर को अपनाया है। किसी राज्य के राज्यक्षेत्र की बाबत केन्द्रीय विक्रय कर अन्ततोगत्वा संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन उस राज्य को समनुदिष्ट किया जाता है, और उस राज्य के फायदे के लिए अधिरोपित किया जाता है। अतः हम यह अभिनिर्धारित करेंगे कि अपीलार्थियों को इस न्यायालय के ऊपर वर्णित विनिश्चय से अधिक सहायता नहीं मिल सकती।

9. यह कथन कर दें कि इस न्यायालय ने दो मामलों में उस कानून की विधिमान्यता को कायम रखा है जिसके द्वारा विधानमण्डल ने दरों का नियत किया जाना दूसरे निकाय के लिए छोड़ दिया था। किन्तु यह इस नियम के अधीन किया गया था कि विधानमण्डल को ऐसे नियतन के लिए मार्गदर्शन का उपबन्ध करना चाहिए। **कलकत्ता नगर निगम और एक अन्य** बनाम **लिबर्टी सिनेमा**[1] में सिनेमा गृहों पर अनुज्ञप्ति फीस के उद्ग्रहण से सम्बन्धित कलकत्ता म्यूनिसिपैलिटी ऐक्ट की धारा 548 पर विचार करते हुए न्यायाधिपति सरकार (जैसे कि वह उस समय थे) ने **पण्डित बनारसी दास भनोट** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले पूर्ववर्ती मामले के प्रति निर्देश करने के पश्चात् बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया—

> "अतः यह स्पष्ट नज़ीर है कि दरों का नियत किया जाना अविधायी निकायों के लिए छोड़ा जा सकता है। इस बाबत कोई संदेह नहीं है कि जब करों की दर नियत करने की शक्ति किसी अन्य निकाय के लिए छोड़ दी जाती है तो विधानमण्डल को ऐसे नियतन के लिए मार्गदर्शन का उपबन्ध करना चाहिए। इसके पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐक्ट में ऐसे मार्गदर्शन का उपबन्ध किया गया था। पहले हम यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि मार्गदर्शन की विधिमान्यता को किसी कठोर एक रूप नियम द्वारा नहीं परखा जा सकता है, यह अधिनियम के उद्देश्य पर निर्भर होगा न कि दर को नियत करने की शक्ति देने पर।"

---

[1] (1965) 2 एस० सी० आर० 477.

[2] (1959) एस० सी० आर० 427.

1973(12) eILR(PAT) SC

10. **दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन** बनाम **बिरला काटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स, दिल्ली और एक अन्य**[1] में इस न्यायालय ने कतिपय करों के उद्ग्रहण के संदर्भ में, जिसके अन्तर्गत विद्युत के उपभोग अथवा विक्रय पर कर आता है, दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन अधिनियम की धारा 113 और धारा 150 के उपबन्धों पर विचार किया था। उस मामले में अवधारण के लिए जो एक प्रश्न उठा था यह था कि क्या उपर्युक्त अधिनियम की धारा 150 ने अनुज्ञेय प्रत्यायोजन की सीमाओं का अतिक्रमण किया है। उस धारा के अनुसार, नगर-निगम किसी अधिवेशन में धारा 113 की उपधारा (2) में उल्लिखित करों में से किसी के उद्ग्रहण के लिए ऐसा संकल्प पारित कर सकेगा जिसमें उद्गृहीत किए जाने वाले कर की अधिकतम दर, जिस वर्ग या जिन वर्गों के व्यक्तियों पर कर लगना है या जिस अभिवर्णन दर या जिन अभिवर्णन का चीजों या सम्पत्तियों पर कर लगना है, वह या वे, अपनाई जाने वाली निर्धारण पद्धति और यदि कोई छूट अनुदत्त की जाती है तो वे परिभाषित हैं। ऐसे किसी संकल्प को केन्द्रीय सरकार द्वारा मंजूर किया जाना होता है और उसके पश्चात् निगम को दूसरा संकल्प पारित करना होता है जिसमें अधिकतम दर के अधीन रहते हुए कर की वास्तविक दर अवधारित करनी होती है। मुख्य न्यायाधिपति वांचू, न्या० हिदायतुल्लाह, सीकरी, रामास्वामी और शैलत ने उपरोक्त धारा की विधिमान्यता को कायम रखा, जबकि न्यायाधिपति शाह और वैद्यलिंगम् ने विसम्मति प्रकट की और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की निगम को विधायी प्राधिकार के अत्यधिक प्रत्यायोजन के कारण धारा 150 (1) शून्य है। मुख्य न्यायाधिपति वांचू और न्यायाधिपति शैलत ने अधिनियम के अनेक उपबन्धों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 150 द्वारा निगम को प्रदत्त शक्ति, मार्गदर्शन विहीन नहीं थी और उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अत्यधिक प्रत्यायोजन की कोटि में आती है। पूर्ववर्ती नज़ीरों का हवाला देने के पश्चात्, मुख्य न्यायाधिपति वांचू ने अपनी और न्यायाधिपति शैलत की ओर से यह मत व्यक्त किया—

> "अतः इन प्रामाणिक व्यवस्थाओं की समीक्षा करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां तक इस न्यायालय का सम्बन्ध है यह सिद्धान्त सुस्थिर है कि विधायी नीति का अवधारण और उसका आचरण के आबद्धकर नियम के रूप में सूत्रबद्ध किया जाना ही आवश्यक विधायी कृत्य है। उस कृत्य को विधानमण्डल प्रत्यायोजित नहीं कर सकता और न

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 251=(1968) 1 उम० नि० प० 826.

प्रत्यायोजन का असीमित अधिकार स्वयं विधायी शक्ति में ही अन्तर्निहित होता है। ऐसा करने के लिए समर्थन संविधान के उपबन्धों से नहीं मिलता। विधानमण्डल को तो अपने ही हाथ में आवश्यक विधायी कृत्य रखने चाहिएं और जो कुछ प्रत्यायोजित किया जा सकता है वह तो अधिनियम के प्रयोजनों और उद्देश्यों की सिद्धि के लिए आवश्यक अधीनस्थ विधान बनाने का काम ही है। जहां उसमें विधि सम्बन्धी नीति पर्याप्त स्पष्टता से उपदर्शित कर दी गई है अथवा एक मानदण्ड अधिकथित कर दिया गया है, वहां न्यायालयों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। मार्गदर्शन के क्या सिद्धान्त अधिकथित किए जाने चाहिएं और किस हद तक और क्या किसी विशिष्ट मामले में मार्गदर्शन के सिद्धान्त दिए गए हैं, ये बातें तो विशिष्ट अधिनियम के उपबन्धों पर विचार करने पर ही तय की जा सकती हैं और न्यायालय को अधिनियम की उद्देशिका सहित उन उपबन्धों पर विचार करना चाहिए। हमें यह और प्रतीत होता है कि जिस निकाय को प्रत्यायोजन किया गया है उसका स्वरूप भी इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए विचार में लिया जाना चाहिए कि क्या प्रत्यायोजन के विषय में पर्याप्त मार्गदर्शन का उपबन्ध कर दिया गया है।"

न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह (जैसे कि वह उस समय थे) ने अपनी और न्यायाधिपति रामास्वामी की ओर से यह मत व्यक्त किया—

"एक बार यह स्थिर हो जाने पर कि विधानमण्डल ने स्वयं यह इच्छा प्रकट की है कि कोई विशेष काम किया जाए और उसका निष्पादन-मात्र किसी चुने गए अभिकरण पर छोड़ दिया है (परन्तु उसने अपना नियंत्रणाधिकार छोड़ नहीं दिया है), तो अत्यधिक प्रत्यायोजन का कोई प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यदि प्रत्यायुक्त ऐसे ढंग से कार्य करता है जो विधानमण्डल की इच्छाओं के प्रतिकूल है, तो विधानमण्डल प्रत्यायुक्त द्वारा किए गए कार्य को उलट सकता है।"

इसके आगे यह मत व्यक्त किया गया—

"इस बात पर आग्रह करने से कि विधानमण्डल ही नगरपालीय कराधान सम्बन्धी हर विषय के लिए उपबन्ध करे, नगरपालिकाएं सरकार के कर संगृहीत करने वाले विभाग मात्र बन जाएंगी। इस प्रकार नगरपालिकाएं स्वाशासी निकाय नहीं बनने पाएंगी, जिस रूप में कि उनका अस्तित्व आशयित है। यह तो सरकार भी कर सकती है कि करों को

1973(12) eILR(PAT) SC 1

संगृहीत करे और फिर वे कर, नगरपालिकाओं को सौंप दे। हमारे देश के नगर-निगमों तथा अन्य स्वाशासी निकायों के इतिहास का यह सही मूल्यांकन नहीं है।"

न्यायाधिपति सीकरी (जैसे कि वह उस समय थे) ने यह मत व्यक्त किया—

"इस अधिनियम में संसद् द्वारा अपने कृत्यों के पूर्ण परित्याग का कोई चिह्न मुझे दिखाई नहीं देता है। इसके विपरीत, संसद् ने निगम का गठन किया है तथा उसके कर्त्तव्य तथा शक्तियां सविस्तार विहित की हैं। किन्तु यदि यह मान भी लिया जाए कि इस न्यायालय के निर्णयों के अनुसार मैं इस बात के लिए आबद्ध हूं कि अधिनियम की धारा 113(2)(घ) तथा धारा 150 की विधिमान्यता की परख यह अभिनिश्चित करके करूं कि अधिनियम में कोई मार्गदर्शी सिद्धान्त या नीति विद्यमान् है या नहीं तो मेरा निष्कर्ष है कि धारा 113 में 'अधिनियम के प्रयोजनों' अभिव्यक्ति में पर्याप्त मार्गदर्शन या नीति विद्यमान् है। जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी है या जिन परिणामों पर पहुंचना है उनकी ओर संकेत अधिनियम में कर दिया गया है और केवल उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति करने या परिणामों पर पहुंचने के प्रयोजन के लिए कर अधिरोपित किए जा सकते हैं। मेरे विचार से यह पर्याप्त मार्गदर्शन है, और दिल्ली नगर निगम जैसे स्वाशासी निकाय के लिए तो है ही। विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने जिन रक्षोपायों (सेफगार्डों) का उल्लेख किया है उनका अवलम्बन प्रत्यायोजन का समर्थन करने के लिए आवश्यक नहीं है।"

न्यायाधिपति शाह (जैसे कि वह उस समय थे) ने पूर्ववर्ती नज़ीरों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् अपनी और न्यायाधिपति वैद्यलिंगम् की ओर से यह मत व्यक्त किया—

"इन सब मामलों का विवेचन करने पर निम्नलिखित सुस्थिर सिद्धान्त प्रकट होते हैं: (1) संविधान के अधीन विधानमण्डल को उसके आबंटित क्षेत्र के भीतर भरपूर शक्तियां हैं, (2) आवश्यक विधायी कृत्य विधानमण्डल द्वारा प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है अर्थात् संविधान द्वारा विधानमण्डल को सौंपें गए किसी विशिष्ट विषय या बात के सम्बन्ध में विधायी कृत्य या प्राधिकार का, उसके पूर्णतः या भागतः विलोप द्वारा, परित्याग नहीं किया जा सकता, (3) किन्तु समनुषक्त या अनुषक्त विधान बनाने की शक्ति विधानमण्डल द्वारा अपनी पसन्द के अन्य निकाय को सौंपी जा सकती है, परन्तु ऐसा तब किया जा सकता है

1973(12) eILR(PAT) SC 1

जब उस निमित्त प्रत्यायुक्त के मार्गदर्शन के लिए अभिव्यक्ततः या विवक्षा द्वारा नीति, सिद्धान्त या मानदण्ड बताए गए हों । मार्गदर्शी सिद्धान्तों के बिना शक्ति का सौंपना विधायी अधिकार के अत्यधिक प्रत्यायोजन की कोटि में आता है, (4) किसी विशिष्ट विषय पर विधान बनाने का प्राधिकार मात्र यह प्राधिकार प्रदत्त नहीं करता है कि उस विषय पर अपनी विधायी शक्ति को वह अन्य निकाय को प्रत्यायोजित कर दें । किसी विषय पर विधानमण्डल को प्रदत्त शक्ति विनिर्दिष्टतः उसी निकाय को सौंपी जाती है, और जो संवैधानिक उपबन्ध वह शक्ति प्रदत्त करता है, उसका यह अनिवार्य आशय है कि जब तक संविधान प्रत्यायोजन की अनुज्ञा अभिव्यक्ततः न दे, तब तक सिद्धान्त, नीति, मानदण्ड या मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित किए बिना, वह शक्ति अन्य निकाय को प्रत्यायोजित नहीं की जाएगी, और (5) कर अधिरोपण करने वाले उपबन्ध इन नियमों के अपवाद नहीं हैं ।"

इसके अतिरिक्त यह मत व्यक्त किया गया—

"संविधान विधायी कृत्यों को राज्य की विधायी शाखा को सौंपता है और यह निदेश देता है कि उन कृत्यों का पालन उसी निकाय द्वारा किया जाना चाहिए जिसको वे संविधान द्वारा सौंपे गए हैं, न कि किसी अन्य द्वारा, जिसे विधानमण्डल अपने को सौंपे गए कृत्य किसी समय प्रत्यायोजित करना ठीक समझता है । यह अधिसंभाव्यता तो है कि किसी विशिष्ट शाखा का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्ति, जिनकी ईमानदारी निस्संदिग्ध है या जो विशेष क्षमताशाली हैं, उस शाखा विषयक विधान बनाने की शक्ति का प्रयोग करने की बेहतर स्थिति में हो, किन्तु संविधान ने जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को, न कि विशेषज्ञों के ऐसे निकायों को, विधान बनाने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए चुना है । विधायी शाखा में निहित कृत्यों को हथियाने का विशेषज्ञों की ओर से और उनका परित्याग करने का लोक-प्रतिनिधियों की ओर से किया गया कोई भी प्रयास संविधान की स्कीम से असंगत होगा । निस्सन्देह अधीनस्थ या अनुषंगी विधान बनाने की शक्ति विधानमण्डल द्वारा किसी प्रत्यायुक्त को प्रदत्त की जा सकती है, किन्तु जब वह यह शक्ति प्रदत्त करता है तब विधानमण्डल द्वारा वह नीति, सिद्धान्त या मानदण्ड भी, जिनसे प्रत्यायुक्त को उस शक्ति के प्रयोग में शासित होना है, उपदर्शित कर दिए जाने चाहिएं जिससे उसे मार्गदर्शन मिलता रहे । जो प्रत्यायोजन इस सीमा का अतिक्रमण करता है, वह संविधान की स्कीम का अतिक्रमण करता है ।"

दिल्ली नगर निगम अधिनियम के उपबन्धों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् न्यायाधिपति शाह और वैद्यलिंगम् ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यायोजन को केवल प्रत्यायुक्त की विशेष प्रास्थिति, स्वरूप, सक्षमता अथवा हैसियत के कारण ही, अथवा प्रत्यायुक्त द्वारा अपने प्राधिकार के दुरुपयोग के निवारण के लिए कानून में बनाए गए उपबन्धों के प्रति निर्देश द्वारा ही नहीं कायम रखा जा सकता। तदनुसार न्यायाधिपति शाह और वैद्यलिंगम् का यह निष्कर्ष था कि धारा 150 (1) शून्य है क्योंकि इसने निगम को विधायी प्राधिकार का अत्यधिक प्रत्यायोजन अनुज्ञात किया है।

11. उपरोक्त से यह प्रकट होगा कि बहुमत द्वारा न केवल दिल्ली नगर निगम अधिनियम की धारा 150 की संवैधानिक विधिमान्यता को कायम रखा गया था बल्कि बहुमत वाले न्यायाधिपतियों ने यह दृष्टिकोण भी व्यक्त किया था कि विधानमण्डल के लिए दूसरे निकाय को अधीनस्थ विधान के कार्य का प्रत्यायोजन करने से पूर्व विधायी नीति और मानक अधिकथित करना अनियार्य है।

12. हम बहस के दौरान रखे गए इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि यदि कोई विधानमण्डल किसी प्रत्यायुक्त को अधीनस्थ अथवा अनुषंगिक विधान बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है तो उस विधानमण्डल के लिए कोई ऐसी नीति, सिद्धान्त अथवा मानक बताना आवश्यक नहीं हैं जो उस शक्ति के प्रयोग में प्रत्यायुक्त का मार्गदर्शन कर सके।

13. प्रारम्भ में ही यह उल्लेख कर दें कि कार्यपालिका को विधायी शक्तियों का विकास बीसवीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण विकास है। अहस्तक्षेप (लेसेजफेअर) की नीति अब प्रचलित नहीं है और जनता की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने की दृष्टि से राज्य द्वारा व्यापक शक्तियां अपनाई जा रही हैं। विधानमण्डल द्वारा पारित अधिकांश आधुनिक सामाजिक एवं आर्थिक विधान मार्गदर्शक सिद्धान्त और विधायी नीति अधिकथिक करते हैं। समय की कमी से उत्पन्न होने वाली परिसीमाओं के कारण विधानमण्डल व्ययों के विषयों पर मुश्किल से ही विचार कर पाते हैं। अतः प्रयोग (एक्सपेरीमेंटेशन) के लिए नम्यता, लचीलापन, समीचीनता और उसके लिए अवसर अभिप्राप्त करने हेतु प्रत्यायुक्त विधान (डेलीगेटेड लेजिस्लेशन) का उपबन्ध किया जाता है। किसी विहित क्षेत्र के भीतर अधीनस्थ विधान बनाने के लिए कार्यपालिका को सशक्त बनाने की पद्धति का विकास आधुनिक कल्याणकारी राज्य की व्यावहारिक और हस्तक्षेपीय आवश्यकताओं के आधार पर हुआ है। साथ ही इस बात का भी

ध्यान रखना होगा कि हमारे संविधान बनाने वालों ने जनता के प्रतिनिधियों को विधायन की शक्ति सौंपी है जिससे कि उक्त शक्ति का प्रयोग न केवल जनता के नाम पर बल्कि अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी बात कहने वाली जनता द्वारा भी किया जा सके। विधायी प्राधिकार के अत्यधिक प्रत्यायोजन के विरुद्ध नियम जनता की प्रभुता से उत्पन्न होता है और उसका आवश्यक-आधार तत्व है। यह नियम यह अनुध्यात करता है कि विधायी नीति के विषय में, वैयक्तियक अधिकारियों अथवा अन्य प्राधिकारियों के दृष्टिकोण को, चाहे वे कितने भी सक्षम क्यों न हों, जनता के प्रतिनिधियों द्वारा यथा अभिव्यक्त जन सामान्य की इच्छा का दर्जा नहीं दिया जा सकता। जैसा कि कूले कृत कान्स्टीट्यूशनल लिमिटेशन, आठवां, संस्करण, जिल्द 1, के पृष्ट 224 पर अभिव्यक्त मत है—

> "संवैधानिक विधि का यह सुस्थिर सिद्धान्त है कि विधि बनाने के लिए विधानमण्डल को प्रदत्त शक्ति का, उस विभाग द्वारा, किसी अन्य निकाय अथवा प्राधिकारी को, प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता। राज्य की सर्वोच्च शक्ति ने उस प्राधिकार को जहां स्थापित किया है यह वहीं रहना चाहिए और विधियां केवल संवैधानिक अभिकरण द्वारा ही बनाई जानी चाहिएं जब तक कि स्वयं संविधान ही तब्दील न हो जाए। वह शक्ति, जिस की निर्णय बुद्धि, प्रज्ञा और देशभक्ति के सहारे यह उच्चतर विशेषाधिकार सौंपा गया है, अन्य अभिकरणों का चुनाव करके जिन पर यह शक्ति न्यागत होगी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकती और न ही वह किसी अन्य निकाय की निर्णयबुद्धि, प्रज्ञा और देशभक्ति को उनके स्थान पर रख सकती है जिनमें एकमात्र रूप से जनता ने इस सर्वोच्च विश्वास को निहित करना ठीक समझा है।"

14. जॉन लॉक के अनुसार जब संसदीय प्रतिनिधियों को चुन लिया जाता है और विधियां बनाने का प्राधिकार उनको प्रत्यायोजित कर दिया जाता है तो उन्हें इसे पुनः प्रत्यायोजित करने का कोई अधिकार नहीं है। इसके विरुद्ध ऐसी विधियां, जो एकमात्र रूप से विधायक का कार्य होने के कारण एक विचारधारा के अनुसार विधायक की ही हैं और ऐसी विधियां जो विधेयक और अधीनस्थ सत्ताधारी का संयुक्त कार्य होने के कारण पूर्व अंगीकरण के आधार पर उसकी हैं दोनों के बीच जेरेमी बेंथम ने दोनों के बीच "दि लिमिट्स आफ ज्यूरिस प्रूडेंस डिफाइण्ड" में प्रभेद बताया है। उसने यह कहा है कि "पश्चात्कथित मामले में विधायक एक प्रकार की अपूर्ण आज्ञा का खाका मात्र देता है जिसे पूरा करने का काम अधीनस्थ सत्ताधारी पर छोड़ दिया जाता

है।" अपने समय की बचत करने और प्रशासन की विशेषित दक्षता का लाभ उठाने के लिए, संसद इस बात से ही संतोष कर लेती है कि उसने सिद्धान्त अधिकथित कर दिए हैं और ब्योरे की बातें (जो बहुधा प्रयोगात्मक होती हैं अथवा उत्तरोतर अनुभव के आधार पर जिनमें निरंतर तालमेल की अपेक्षा होती है) किसी उत्तरदायी मंत्री अथवा लोक-निकाय पर छोड़ दी हैं। (हेविट कृत दि कन्ट्रोल आफ डेलिगेटेड लैजिसलेशन, 1953 वाले संस्करण का सैसिल कार द्वारा प्राक्कथन देखिए)।

15. जैसा कि **देवीदास गोपाल कृष्ण** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मत व्यक्त किया है संविधान विधानमण्डल को विधियां बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है और कर्तव्य अधिरोपित करता है। आवश्यक विधायी कृत्य विधायी नीति का अवधारण और आचरण के नियम के रूप में उसका बनाया जाना है। प्रकटतः यह अपने कर्तव्यों का दूसरे के पक्ष में अधित्याग नहीं कर सकता। किन्तु कल्याणकारी राज्य के बहुविध कार्यकलापों को दृष्टि में रखते हुए, वह संभवतः ब्यौरे की सभी बातों के लिए ऐसी व्यवस्था नहीं कर सकता है जो विषय परिस्थिति के बदलते हुए पहलुओं के लिए उपयुक्त हो। विभिन्न ब्योरे की बातों की व्यवस्था का भार उसे आवश्यक रूप से कार्यपालिका को अथवा किसी अन्य अभिकरण को ही प्रत्यायोजित करना पड़ेगा। किन्तु प्रत्यायोजन की ऐसी प्रक्रिया में एक खतरा अन्तर्निहित है। अत्यधिक कार्यभार से ग्रस्त अथवा सशक्त कार्यपालिका द्वारा नियन्त्रित विधानमण्डल प्रत्यायोजन की परिसीमाओं का असम्यक् रूप से अतिक्रमण कर सकता है। हो सकता है कि वह कोई नीति ही अधिकथित न करे, अपनी नीति को अस्पष्ट और सामान्य शब्दों में घोषित करे, कार्यपालिका के मार्गदर्शन के लिए कोई मानक उपवर्णित न करे, अपने द्वारा अधिकथित नीति को तब्दील अथवा उपांतरित करने को मनमानी शक्ति कार्यपालिका को अधीनस्थ विधान पर अपना नियंत्रण आरक्षित किए बिना प्रदत्त करे। किसी अन्य अभिकरण के पक्ष में पूर्णतः अथवा भागतः विधायी शक्ति का यह आत्मविलोपन प्रत्यायोजन की अनुज्ञेय सीमाओं के परे है। आक्षेपकृत कानून का उचित और उदार और असंकुचित अर्थान्वयन करने के बाद यह अभिनिर्धारित करना कि क्या विधानमण्डल ने ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया है न्यायालय का कर्त्तव्य है।

16. विधायी शक्ति के अनुज्ञेय प्रत्यायोजन की सीमाओं का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष बहुत से मामलों में उत्पन्न हुआ है। **दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन** बनाम **बिरला कॉटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स**[2] वाले मामले में

[1] ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1895.
[2] (1968) 3 एस० सी० आर० 231.

मुख्य न्यायाधिपति वांचू और न्यायाधिपति शाह के निर्णय में उन मामलों का विस्तार से पुनरीक्षण किया गया है और उन्होंने उन मामलों द्वारा स्थापित निष्कर्षों या सिद्धांतों को सार रूप में दिया है। उन निष्कर्षों अथवा सिद्धान्तों को पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है।

17. यह विषय इस न्यायालय के समक्ष सर्वप्रथम **दिल्ली लॉज ऐक्ट, 1912 वाले मामले**[1] में आया। यद्यपि हर एक विद्वान् न्यायाधीश ने, जिसने मामला सुना, एक पृथक् निर्णय लिखा था किन्तु विभिन्न निर्णयों से जो दृष्टिकोण सामने आया है वह यह है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि विधायी शक्ति में प्रत्यायोजन का असीमित अधिकार अन्तर्निहित है। यह बात संविधान के उपबन्धों से समर्थित नहीं है जिसने विधायन की शक्ति या तो संसद् में अथवा राज्य विधानमण्डलों में निहित की है। प्रत्यायोजन का विधि-संगत होना इस पर निर्भर है कि वह ऐसे आनुषंगिक उपाय के रूप में निहित किया गया हो जिसे विधानमण्डल अपनी विधायी शक्तियों का प्रभावी और पूर्ण रूप से प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक समझता हो। विधानमण्डल को आवश्यक विधायी कृत्य अपने हाथ में रखने चाहिएं। 'आवश्यक विधायी कृत्य' से यर्थाथतः क्या गठित होता है उसे सामान्य शब्दों में परिभाषित करना कठिन है किन्तु यह बात बहुत स्पष्ट है कि आवश्यक विधायी कृत्य में कम-से-कम विधायी नीति का अवधारण और आचरण के आबद्धकर रूप में उसकी संरचना अवश्यक रूप से होनी चाहिए। इस प्रकार विधानमण्डल द्वारा पारित विधि जब विधायी नीति की घोषणा करती है और वह मानक अधिकथित करती है जो अधिनियमित करके विधि का नियम बना दिया गया है तो वह नियम, विनियम अथवा उपविधियां बनाने जैसे अधीनस्थ विधायन का कार्य, जो अपनी प्रकृति से ही कानून का आनुषंगिक है, अधीनस्थ निकायों के लिए छोड़ सकती है। अधीनस्थ प्राधिकारी को यह काम उस विधि में ढांचे के अन्दर करना चाहिए जिसके द्वारा प्रत्यायोजन किया गया है और अधीनस्थ विधान को उस विधि से संगत होना होता है जिसके अधीन यह बनाया जाता है और यह विधि में अधिकथित नीति और मानक की सीमाओं से परे नहीं जा सकता। जहां तक विधायी नीति का प्रतिपादन पर्याप्त स्पष्टता के साथ कर दिया जाता है तथा मानक अधिकथित कर दिया जाता है वहां तक न्यायालयों को, उस विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो किसी विशेष मामले में, प्रत्यायोजन की आवश्यक सीमा अवधारित करने के लिए, निस्सन्देह रूप से विधानमण्डल में निहित रहता है (**देखिए—दिल्ली म्यूनिसिपल**

---

[1] (1951) एस० सी० आर० 747.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

कारपोरेशन बनाम **बिरला कॉटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स**[1] में मुख्य न्यायाधिपति वांचु का मत) ।

18. **हरिशंकर बागला** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] में इस न्यायालय ने एसेन्शियल सप्लाइज (टैम्परेरी पावर्स) ऐक्ट, 1946 की धारा 3 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रख्यापित काटन टैक्सटाइल (कन्ट्रोल आफ मूवमेण्ट) आर्डर, 1948 के खण्ड 3 की विधिमान्यता पर विचार किया था। आक्षेपित खण्ड की विधिमान्यता को कायम रखते हुए, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विधानमण्डल को विधि की नीति और वे विधिक सिद्धान्त घोषित कर देने चाहिएं जो किन्हीं विशिष्ट मामलों को नियन्त्रित करने के लिए हैं और विधि के निष्पादन में पदधारियों तथा सत्ता प्राप्त निकाय का मार्गदर्शन करने के लिए मानक का उपबन्ध करना चाहिए और यदि विधानमण्डल ने अधिनियम में ऐसा सिद्धान्त अधिकथित किया है और वह सिद्धान्त आवश्यक वस्तुओं का प्रदाय बनाए रखना अथवा उसमें वृद्धि करना है और निर्दिष्ट कीमतों पर उनका साम्योचित (ईक्विटेबुल) वितरण और उपलभ्यता सुनिश्चित करना है, तो शक्ति का प्रयोग विधिमान्य है।

19. **पण्डित बनारसी दास भनोट** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[3] में बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति वेंकटरामा अय्यर ने यह मत व्यक्त किया—

> "इस बाबत स्पष्ट नज़ीरें हैं कि विधानमण्डल के लिए कराधान विधियों के कार्यकरण से सम्बन्धित ऐसे ब्यौरों का अवधारणा कार्यपालिका के लिए छोड़ देना असांविधानिक नहीं है जैसे कि उन व्यक्तियों का चुनाव जिन पर वह कर लगाया जाना है, वे दरें जिन पर माल के विभिन्न वर्गों की बाबत इसे वसूल किया जाना है और तत्सदृश बातें।"

विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि सेन्ट्रल प्रोविन्स एण्ड बरार सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1947 की धारा 6 (2) द्वारा राज्य सरकार को, छूटों से सम्बन्धित अनुसूची को संशोधित करने के लिए प्रदत्त शक्ति, इस प्रश्न से सम्बन्धित मान्यता प्राप्त विधायी पद्धति के अनुरूप है और असंवैधानिक नहीं है।

---

1 (1968) 3 एस० सी० आर० 231.

2 (1955) 1 एस० सी० आर० 380.

3 (1959) एस० सी० आर० 427.

20. **वसन्त लाल मगनभाई संजनवाला** बनाम **मुम्बई राज्य और अन्य**[1] में बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67) की धारा 6 (2) की विधिमान्यता पर आपत्ति की गई थी। उस उपबन्ध ने प्रान्तीय सरकार को किसी विशेष क्षेत्र में स्थित भूमि के अभिधारियों द्वारा संदेय अधिकतम भाटक की निम्नतम दर अधिसूचना द्वारा नियत करने के लिए अथवा ऐसी दर किसी अन्य आधार पर, जैसा यह ठीक समझे, नियत करने के लिए प्राधिकृत किया था। न्यायाधिपति गजेन्द्र गडकर ने, जैसे कि वह उस समय थे, बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि प्रत्यायोजन की शक्ति विधायी शक्ति का संघटक तत्व है तो भी विधानमण्डल किसी भी दशा में अपने आवश्यक विधायी कृत्य का प्रत्यायोजन नहीं कर सकता और किसी गौण अथवा आनुषंगिक शक्तियों का अपने पसन्द के किसी प्रत्यायुक्त को प्रत्यायोजन करने से पूर्व इसे विधायी नीति और सिद्धान्त अधिकथित करने चाहिएं जिससे कि प्रत्यायुक्त को उसे कार्यान्वित करने के लिए समुचित मार्गदर्शन मिल सके।

21. **कलकत्ता नगर निगम और एक अन्य** बनाम **लिबर्टी सिनेमा**[2], **बी० शमा राव** बनाम **पाण्डिचेरी संघ राज्यक्षेत्र**[3] और **देवी दास गोपाल कृष्ण** बनाम **पंजाब राज्य**[4] में इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोणों को ऊपर पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। **सीताराम बिशम्भर दयाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[5] में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "यह सत्य है कि किसी कर की दर नियत करने की शक्ति विधायी शक्ति है किन्तु यदि विधानमण्डल विधायी नीति अधिकथित करता है और आवश्यक मार्गदर्शन का उपबन्ध करता है तो उस शक्ति को कार्यपालिका को प्रत्यायोजित किया जा सकता है।"

22. उपरोक्त से यह बात प्रकट होगी कि बहुत सी नज़ीरों में इस न्यायालय ने जो दृष्टिकोण अपनाया है वह यह है कि दूसरे प्राधिकारी को अधीनस्थ अथवा आनुषंगिक विधान बनाने के लिए शक्ति प्रदत्त करते समय विधानमण्डल को सम्बद्ध प्राधिकारी के मार्गदर्शन के लिए नीति, सिद्धान्त अथवा मानक अवश्य अधिकथित करना चाहिए। उक्त दृष्टिकोण की पुष्टि सात न्यायाधीशों से गठित

---

1 (1961) 1 एस० सी० आर० 341.
2 (1965) 2 एस० सी० आर० 477.
3 (1967) 2 एस० सी० आर० 650.
4 ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1895=1967 3 एस० सी० आर० 577.
5 1972) 2 एस० सी० आर० 141.

इस न्यायालय के न्यायपीठों द्वारा की जा चुकी है। हमारी यह राय है कि हमारे ध्यान में ऐसी कोई अकाट्य बात नहीं लाई गई है जो उक्त दृष्टिकोण से विचलन को न्यायोचित ठहराए। उस दृष्टिकोण के बाध्यकारी प्रभाव को, किसी भी लेखक की राय चाहे वह कितना भी प्रसिद्ध हो अथवा विदेशी निर्णयों में उन कानूनों के संदर्भ में की गई मताभिव्यक्तियां जिन पर उनमें विचार किया गया हो, प्रभावहीन नहीं बना सकती हैं।

23. कूले कृत 'कान्स्टीट्यूशनल लिमिटेशन्स', जिल्द 1, आठवां संस्करण के पृष्ठ 228 पर प्रत्यायोजन के बारे में यह मत व्यक्त किया गया है—

> "यह सिद्धान्त कि विधियां बनाने के लिए विधानमण्डल को प्रदत्त शक्ति का प्रत्यायोजन किसी अन्य प्राधिकारी को नहीं किया जा सकता, ऐसी शक्ति का प्रत्यायोजन करने, जो विधायी न हो और जिसका प्रयोग विधानमण्डल स्वयं साधिकार कर सकता हो, विधानमण्डल को निवारित नहीं करता। यह किसी विधि के कार्यान्वयन से सम्बन्धित, जिसमें विवेकाधिकार अन्तर्वलित है, प्राधिकार प्रदत्त कर सकता है, किन्तु ऐसे प्राधिकार का प्रयोग विधि के अधीन और उसके अनुसरण में ही किया जाना चाहिए। विधानमण्डल को विधि की नीति की घोषणा अवश्य ही करनी चाहिए और वे विधिक सिद्धान्त नियत करने चाहिएं जो किन्हीं विशेष मामलों को शासित करें, किन्तु किसी प्रशासनिक अधिकारी अथवा निकाय में ऐसी शक्ति निहित हो सकती है जो ऐसे तथ्यों और अवस्थाओं को अभिनिश्चित करने के बारे में हों, जिन्हें वह नीति अथवा सिद्धान्त लागू होते हैं। यदि यह नहीं किया जाता है तो विधियों में असीम भ्रम पैदा हो जाएगा और यदि ब्यौरे देने और विशिष्टता प्रदान करने का प्रयास किया जाएगा तो न तो उनके उपबन्ध और न उनका निष्पादन पर्याप्त होगा।"

24. इस विषय पर 'विलोबाई ऑन दि कान्स्टीट्यूशन ऑफ़ दि युनाइटेड स्टेट्स' द्वितीय संस्करण, जिल्द 3 के पृष्ठ 1637 पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया गया है—

> "विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन का प्रतिषेध करने वाले नियम के साथ जो शर्तें हैं और जिन पर पहले भी ध्यान दिया गया है, उनमें यह उपबन्ध है कि जबकि वास्तविक विधि संरचना शक्ति का प्रत्यायोजन

1973(12) eILR(PAT) SC 1

नहीं किया जा सकता, कार्यपालिका और प्रशासनिक प्राधिकारियों को निम्नलिखित के बारे में विवेकाधिकार दिया जा सकता है—

> (1) यह अवधारित करना कि विनिर्दिष्ट मामलों में उन शक्तियों का प्रयोग जो विधायी रूप से प्रदत्त की गई हैं कब और किस प्रकार किया जाना है; और (2) ऐसे प्रशासनिक नियमों और विनियमों को बनाना, जो उनके अधीनस्थों और जनता दोनों पर ही आबद्धकर हों, जिनके द्वारा वह नीति विस्तार के साथ नियत की गई हो जिसमें कानूनों की अपेक्षाओं की पूर्ति की जानी है और उनके द्वारा सृजित अधिकारों का उपभोग किया जाना है।"

इस विषय पर 'कार्पस ज्यूरिस सेकण्डम', जिल्द 73, पृष्ठ 324 पर विचार किया गया है। वहां यह कथन किया गया है कि विधि संरचना शक्ति किसी प्रशासनिक निकाय को इसलिए नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासनिक विवेकाधिकार के बहाने से उसका प्रयोग करे। तद्नुसार, कानूनों के प्रशासन की बाबत प्रशासनिक निकायों को शक्तियां प्रत्यायोजित करते समय विधानमण्डल को आमतौर पर उनके मार्गदर्शन के लिए नीति, मानक अथवा नियम अवश्य विहित करने चाहिएं और उनमें उसके बारे में मनमाना और अनियन्त्रित विवेकाधिकार निहित नहीं करना चाहिए और जो कानून अथवा अध्यादेश इस बाबत पूरा नहीं है वह अविधिमान्य है। दूसरे शब्दों में, किसी प्रशासनिक अभिकरण को सृष्ट करके विधायी शक्ति के विशुद्ध प्रत्यायोजन से बचने के लिए विधानमण्डल को चाहिए कि वह ऐसे अभिकरण की शक्ति की सीमाएं निश्चित करे और अपने कृत्य के सम्पादन में उस पर निश्चित प्रक्रिया और विनिश्चय नियमों को उस पर आबद्धकर करें, और यदि विधानमण्डल किसी प्रशासनिक अभिकरण को प्रत्यायोजित शक्ति की सीमाएं युक्तियुक्त स्पष्टता के साथ विहित करने में असफल रहता है अथवा यदि वे सीमाएं अत्यधिक विस्तृत हैं, तो प्रत्यायोजन का इसका प्रयत्न अकृतता (नलिटी) है।

25. हम इस दृष्टिकोण से भी सहमत नहीं हैं कि यदि विधानमण्डल किसी अधिनियमिति को निरस्त कर सकता है, जैसा कि वह सामान्यतः कर सकता है, तो उसे अधीनस्थ विधान की संरचना करने वाले प्राधिकारी पर पर्याप्त नियन्त्रण प्राप्त रहता है और, इस प्रकार, विधानमण्डल के लिए कानून में विधायी नीति, मानक या मार्गदर्शन नियत करना आवश्यक नहीं है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने के बड़े विचित्र परिणाम होंगे। मान लें कि संसद् कल को यह अधिनियमित करती है कि चूंकि देश में आपराधिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी है, इसलिए एक

1973(12) eILR(PAT) SC 1

निश्चित तारीख से देश में प्रवर्तित की जाने वाली आपराधिक विधि वही होगी जो उस अधिनियमिति में उल्लिखित अधिकारी द्वारा बनाई जाए। क्या यह कहा जा सकता है कि विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन नहीं हुआ है, भले ही संसद् ने कानून में ऐसी आपराधिक विधि बनाए जाने के लिए मार्गदर्शन अथवा विधायी नीति का अधिकथन नहीं किया है? हमारी यह राय है कि ऐसी अधिनियमिति के दोष की अनदेखी या उपेक्षा इस आधार पर नहीं की जा सकती कि सम्बद्ध अधिकारी द्वारा बनाई गई विधि का यदि संसद् अनुमोदन नहीं करती तो वह उस अधिनियमिति को जिसके द्वारा विधि बनाने के लिए उस अधिकारी को प्राधिकृत किया गया था निरस्त कर सकती है।

26. **काब एण्ड कम्पनी लिमिटेड और अन्य** बनाम **नारमन ईगर्ट क्राप**[1] के मामले में जुडीशियल कमेटी के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया है। उस मामले में अपीलार्थी-कम्पनियों ने, कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट के विरुद्ध, जो क्वीन्स लैण्ड की सरकार की ओर से नाममात्र का प्रतिवादी था, दो वाद संस्थित किए। पहला वाद स्टेट ट्रांसपोर्ट फैसिलिटीज ऐक्ट के अधीन क्वीन्सलैण्ड राज्य में अपीलार्थियों द्वारा संचालित मोटर यानों से माल और यात्रियों के वहन लेखे उद्गृहीत फीस के प्रतिसंदाय के लिए था। दूसरा वाद उन्हीं प्रयोजनों के लिए जिनके लिए पहला वाद लाया गया था स्टेट ट्रान्सपोर्ट ऐक्ट के अधीन उद्गृहीत फीस के प्रतिसंदाय के लिए था। अपीलार्थियों ने दोनों ही वादों में विधान की विधिमान्यता को चुनौती दी थी। प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि अनुज्ञप्ति फीस कराधान का अधिरोपण था, जो यदि संसद् के प्राधिकार के बिना किया जाता है तो अवैध और शून्य होगा, किन्तु यह दलील दी कि दोनों ऐक्ट क्वीन्सलैण्ड विधानमण्डल की विधायी क्षमता के भीतर थे। जुडीशियल कमेटी ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य की शान्ति, कल्याण और सुशासन के लिए विधान बनाने की क्वीन्सलैण्ड विधान-मण्डल की शक्ति कतिपय सीमाओं के भीतर पूर्व और सर्वप्राधिकारपूर्ण थी। इसके अतिरिक्त यह अभिनिर्धारित किया गया कि क्वीन्सलैण्ड विधानमण्डल उस उद्देश्य और प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए, जो उनके मस्तिष्क में थे और जिनकी उन्होंने परिकल्पना की थी किसी ऐसे अभिकर्ता अथवा किसी अधीनस्थ अभिकरण अथवा किसी तन्त्र का उपयोग करने का हकदार था। जिसे वह ठीक समझता हो। यह मत व्यक्त किया गया था कि विधानमण्डल लाईसेंस और परमिट फीस नियत करने और उन्हें वसूल करने के लिए कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट को अपने यन्त्र के रूप में उपयोग करने का हकदार था, परन्तु

[1] (1967) ए० सी० 141.

यह जब तक कि उन्होंने अपनी हैसियत यथावत् बनाए रखी हो और उसके ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखा हो । इस सन्दर्भ में जुडीशियल कमेटी ने यह मत व्यक्त किया—

> "माननीय न्यायाधिपतियों का यह मत था कि क्वीन्सलैण्ड विधानमण्डल ट्रान्सपोर्ट ऐक्ट्स के निबन्धनों के अनुसार विधान बनाने के लिए पूर्णतः समर्थित था । उन्होंने अपनी हैसियत यथावत् बनाए रखी थी और कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखा हुआ था क्योंकि वे किसी भी समय उस विधान को निरस्त कर सकते थे और ऐसा प्राधिकार और विवेकाधिकार वापस ले सकते थे जो उन्होंने उसमें निहित किया था । यह प्राख्यान नहीं किया जा सकता कि संसद् की मंजूरी के बिना अथवा संसदीय अनुमोदन के बिना दावा अथवा विशेषाधिकार द्वारा धन उद्गृहीत किया गया था ।"

हमारी राय है कि उपरोक्त मताभिव्यक्ति में नियन्त्रण बनाए रखने और विधान को निरस्त किए जाने के प्रति निर्देश को आक्षेपकृत विधान के कुल प्रभाव के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए। आक्षेपित विधान के प्रभाव को न्या० स्टेबिल के निर्णय में स्पष्टतः प्रोद्धृत किया गया है और जुडीशियल कमेटी ने उस निर्णय से निम्नलिखित अवतरण को सानुमोदन उद्धृत किया :—

> "कमिश्नर को संसद् द्वारा अधिकथित विधि से बाहर कार्य करने की कोई शक्ति नहीं दी गई हैं । संसद् ने अपनी किसी शक्ति का अधित्याग नहीं किया है । इसने परिधि अथवा सीमाओं का वह संवर्ग (सेट) अधिकथित किया है जिसके भीतर संसद् द्वारा सृष्ट पद को धारण करने वाला व्यक्ति लाईसेंस मंजूर कर सकेगा अथवा मंजूर करने से विरत रख सकेगी और ऐसे फीसों को जो कर हैं, निर्धारित और संगृहीत कर सकेगा अथवा संगृहीत करने से विरत रख सकेगा ।"

उपरोक्त अवतरण से यह दर्शित होता है कि जुडीशियल कमेटी ने इस तथ्य पर अभिव्यक्त रूप से ध्यान दिया था कि आक्षेपित विधान ने वह परिधि और सीमा का वह संवर्ग अधिकथित किया था जिसके भीतर पदधारक प्राधिकारी कार्य कर सकता था । अतः उपर्युक्त मामला इस प्रस्थापना के लिए नजीर नहीं हो सकता कि संसद् के लिए परिधि अथवा सीमाओं का वह संवर्ग अधिकथित करना आवश्यक नहीं है जिसके भीतर प्राधिकृत व्यक्ति कार्य कर सकता है ।

27. हमारा ध्यान 'ऐबडिकेशन' (अधित्याग) शब्द के शाब्दिक अर्थ की ओर दिलाया गया है और यह तर्क दिया गया है कि यदि विधानमण्डल उस प्राधिकारी के मार्गदर्शन के लिए, जिसे वह अधीनस्थ विधान बनाने की शक्ति

1973(12) eILR(PAT) SC 1

देता है, कोई मार्गदर्शन, नीति अथवा मानक अधिकथित नहीं करता तो यह (विधान) तब तक अपने कृत्य का अधित्याग नहीं करता जब तक यह उस शक्ति को देने वाले कानूनों को निरस्त करने की शक्ति अपने पास रखता है। "ऐबडिकेशन" शब्द का सही अभिप्राय क्या है और यदि विधानमण्डल उस विधि को निरस्त करने का प्राधिकार अपने पास रखता है जिसके द्वारा अधीनस्थ विधान बनाने की असरणीबद्ध (अनकैनलाइज्ड) और मार्गदर्शन विहीन शक्ति दूसरे निकाय को प्रदत्त की जाती है, तो क्या यह "ऐबडिकेशन" शब्द का उचित प्रयोग है ऐसे प्रश्न हैं जो अर्थ विषयक बारीकियों में रुचि रखने वाले साहित्य के अध्येता व्यक्तियों के लिए कुछ रोचक हो सकते हैं, हमारा यह दृष्टिकोण है कि वे प्रश्न इस सिद्धान्त में कोई दोष नहीं निकाल सकते हैं, जो इस न्यायालय को बहुत सी नजीरों द्वारा सुस्थापित हो चुका है कि विधानमण्डल को उस प्राधिकारी के लिए मार्गदर्शन, सिद्धान्त अथवा नीति अवश्य अधिकथित करनी चाहिए जिसे वह अधीनस्थ विधान बनाने की शक्ति सौंपता है। यदि हम समस्त आदरपूर्वक कहना चाहें तो वह विधि की सही स्थिति वही है जो न्या० मुखर्जी ने दिल्ली लॉज ऐक्ट वाले मामले में प्रतिपादित की है। विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया था :—

> "यह नहीं कहा जा सकता कि विधायी शक्ति में प्रत्यायोजन का असीमित अधिकार अन्तर्निहित है। यह बात संविधान के उपबन्धों से समर्थित नहीं है और प्रत्यायोजन की विधि सम्मत होना पूर्ण तौर पर इस बात पर निर्भर है कि उसका प्रयोग उस आनुषंगिक उपाय के रूप में किया जाय जिसे विधानमण्डल अपनी विधायी शक्ति का प्रभावी तौर पर और पूर्ण रूप से प्रयोग करने के लिए आवश्यक समझता है। विधानमण्डल को आवश्यक विधायी कृत्य अवश्य ही अपने हाथ में रखने चाहिए, जिनमें विधायी नीति अधिकथित करना और वह मानक अधिकथित करना है, जिसे विधि के नियम के रूप में अधिनियमित किया जाना है और जो प्रत्यायोजित किया जा सकता है वह अधीनस्थ विधायन है, जो अपनी प्रकृति से ही उस कानून का आनुषंगिक है जो उस की संरचना की शक्ति प्रदत्त करता है। यदि विधायी नीति पर्याप्त स्पष्टता से प्रदत्त की जाती है अथवा मानक अधिकथित किया जाता है तो न्यायालय उस विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न उन्हें करना चाहिए जो आनुषंगिक रूप से किसी विशेष दशा में प्रत्यायोजन की आवश्यक सीमा अवधारित करने के विषय में स्वयं विधानमण्डल को प्राप्त है।"

1973(12) eILR(PAT) SC 1

28. उपर्युक्त के परिणामस्वरूप हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम की धारा 8(2)(ख) में विधायी शक्ति के अधित्याग अथवा अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष नहीं है। अपीलें असफल होती हैं और उन्हें खर्चे सहित खारिज किया जाता है। एक सुनवाई की फीस दी जाएगी।

न्यायाधिपति मैथ्यू—

29. ये अपीलें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 133 (1) (ग) के अधीन अनुदत्त प्रमाणपत्र के आधार पर उस न्यायालय के सामान्य निर्णय के विरुद्ध की गई हैं, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 8 (2) (ख) के उपबन्धों में अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष नहीं हैं और इसलिए उन पर इस आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती कि संसद् ने उसका अधिनियमन करके अपने आवश्यक विधायी कृत्य का अधित्याग किया है।

30. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले श्री ए० के० सेन ने यह निवेदन किया है कि संसद् ने धारा 8 (2) (ख) का अधिनियमन करके उस उपखण्ड के क्षेत्र के भीतर आने वाले अन्तर्राज्यिक व्यापार के अनुक्रम में माल के विक्रय आवर्त पर उद्ग्रहणीय कर की दर नियत करने वाले विधायी कृत्य का प्रत्यायोजन किया है और अपने विधायी कृत्य का उस सीमा तक परित्याग किया है जिस सीमा तक उसने स्थानीय विक्रयों पर कर लगाने के लिए समुचित राज्य में समय-समय पर विक्रय कर विधि के अनुसार नियत किए जाने वाली दर को अपनाया है। काउन्सेल ने यह निवेदन किया है कि कर की दर नियत करना एक आवश्यक विधायी कृत्य है और इस कृत्य को प्रत्यायुक्त के मार्गदर्शन के लिए विधायी नीति अधिकथित किए बिना प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। इस दलील के समर्थन में काउन्सेल ने इस विषय पर इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया है।

31. **कलकत्ता नगर निगम और एक अन्य** बनाम **लिबर्टी सिनेमा**[1] में कलकत्ता म्यूनिसिपल ऐक्ट, 1951 की धारा 548 (2) की, जिसने निगम को 'ऐसी दरों पर जो समय-समय पर निगम द्वारा नियत की जाएं' फीस उद्गृहीत करने के लिए सशक्त किया था, विधिमान्यता को अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार

---

[1] (1965) 2 एस० सी० आर० 477.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

पर चुनौती दी गई थी चूंकि इसमें रकम नियत करने के लिए कोई मार्गदर्शन नहीं था। **पण्डित बनारसी दास मनोहर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले विनिश्चय का अवलम्ब लेते हुए बहुमत ने उस उपबन्ध को यह अभिनिर्धारित करते हुए कायम रखा कि कर की दर नियत करना चूंकि आवश्यक विधायी कृत्य नहीं है अतः उसे अविधायी निकाय को विधिमान्य रूप से प्रत्यायोजित किया जा सकता है। किन्तु यह मत व्यक्त किया गया कि जब यह किसी ऐसे निकाय को दिया जाता है तो विधानमण्डल को ऐसे नियतीकरण के लिए मार्गदर्शन का उपबन्ध करना चाहिए। न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि ऐक्ट के अधीन निगम को सौंपे गए कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए निगम की वित्तीय आवश्यकताओं में मार्गदर्शन उपलब्ध है।

32. **म्युनिसिपल बोर्ड, हापुड़** बनाम **रघुवेन्द्र कृपाल**[2] में यू० पी० म्यूनिसिपैलिटीज़ ऐक्ट, 1916 की विधिमान्यता अन्तर्वलित थी। उस अधिनियम ने नगरपालिकाओं को कर की दर नियत करने के लिए सशक्त किया था और उद्गृहीत किए जाने वाले करों के प्रकारों को प्रगणित करने के पश्चात् ऐसे उद्ग्रहण के लिए एक विशेषित प्रक्रिया विहित की थी और सरकार की मंजूरी के लिए भी उपबन्ध किया था। अधिनियम की धारा 135 (3) में यह निश्चायक उपधारणा की गई थी कि विहित प्रक्रिया का पालन उस बारे में सरकार द्वारा जारी की जाने वाली किसी अधिसूचना द्वारा हो गया था। यह दलील दी गई थी कि यह उपबन्ध अधिकारातीत था क्योंकि कर के अधिरोपण के बारे में विधानमण्डल ने आवश्यक विधायी कृत्य का उस सीमा तक अधित्याग किया था जिस सीमा तक राज्य सरकार को अधिनियम के भंगों (ब्रीचेज़) को उपमर्षित (कण्डोन) करने और स्वयं अधिनियम की उपेक्षा करने की शक्ति दी गई थी। यह दलील दी गई थी कि यह अप्रत्यक्ष छूट देने अथवा व्ययन करने वाली शक्ति है। न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए यह कहा कि नगरपालिकाओं के प्रजातन्त्रीय ढांचे को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें अपने प्रशासन के लिए इन करों के आगमों की आवश्यकता होती है, इन करों को अधिरोपित और उद्गृहीत करने की शक्ति नगरपालिकाओं पर ही छोड़ देना उचित है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह कहा कि इस तथ्य के अलावा कि बोर्ड उस स्थानीय जनता का, जिससे कर उद्गृहीत किया गया था, प्रतिनिधि निकाय था, बोर्ड द्वारा विधानमण्डल की आज्ञा पालन न किए जाने की दशा में, सरकार द्वारा रोक और नियन्त्रण के रूप में ऐसे अन्य सुरक्षोपाय थे, जो बोर्ड की कार्यवाही को निष्प्रभावी कर सकते थे।

[1] (1959) एस० सी० आर० 427.

[2] (1966) 1 एस० सी० आर० 950.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

33. **देवीदास गोपाल कृष्ण** बनाम **पंजाब राज्य**[1] में प्रश्न यह था कि क्या वैस्ट पंजाब जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1948 की धारा 5, जिसने राज्य सरकार को ऐसी दरों पर विक्रय कर नियत करने के लिए सशक्त किया था जैसी वह ठीक समझे, अविधिमान्य थी। न्यायालय ने उस धारा को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि विधानमण्डल ने दरों के नियत करने के विषय में कार्यपालिका के लिए कोई नीति अथवा मार्गदर्शन अधिकथित नहीं किया था। मुख्य न्यायाधिपति सुब्बाराव ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह संकेत किया कि राज्य की आवश्यकताएं और अधिनियम के प्रयोजन, कर की दरों को नियत करने के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन का उपबन्ध नहीं करेंगे। उन्होंने प्रत्यायोजन की प्रक्रिया में अन्तर्निहित खतरे के प्रति संकेत किया—

> "अत्यधिक कर्त्तव्य भार से आक्रान्त विधानमण्डल अथवा सशक्त कार्यपालिका द्वारा नियन्त्रित विधानमण्डल, प्रत्यायोजन की सीमाओं का असम्यक् रूप से अतिक्रमण कर सकता है। हो सकता है कि वह कोई नीति ही अधिकथित न करे; कार्यपालिका के मार्गदर्शन के लिए कोई मानक उपवर्णित न करे, अपने द्वारा अधिकथित नीति को तब्दील अथवा उपान्तरित करने की मनमानी शक्ति कार्यपालिका को, अधीनस्थ विधान पर अपना नियन्त्रण आरक्षित किए बिना, प्रदत्त करे। किसी अन्य अभिकरण के पक्ष में पूर्णतः या भागतः विधायी शक्ति का यह आत्मविलोपन, प्रत्यायोजन की अनुज्ञेय सीमाओं के परे है।"

34. **दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन** बनाम **बिरला कॉटन एण्ड स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स**[2] में मुख्य प्रश्न कराधान की शक्तियों के नगरनिगमों को प्रत्यायोजन की सांविधानिकता के बारे में था। दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन ऐक्ट (1957 का अधिनियम संख्या 66) की धारा 113 (2) ने निगम को कतिपय वैकल्पिक कर उद्गृहीत करने के लिए सशक्त किया था। धारा 150 के अधीन निगम को उद्गृहीत किए जाने वाले कर की अधिकतम दर, व्यक्तियों के वर्ग और वस्तुओं के विवरण और कर लगायी जाने वाली सम्पत्ति को, अपनाई जाने वाली निर्धारण की पद्धति और दी जाने वाली छूटों को, यदि कोई हों, परिभाषित करने की शक्ति दी गई थी। न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि यह प्रत्यायोजन विधिमान्य है। मुख्य न्यायाधिपति वांचू ने यह मत व्यक्त किया कि 'अधिनियम' में पर्याप्त मार्गदर्शन, रोक और सुरक्षोपाय हैं जो

---

1 (1967) 3 एस० सी० आर० 557.

2 (1968) 3 एस० सी० आर० 251=1968 1 उम० नि० प० 826.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

अत्यधिक प्रत्यायोजन का निवारण करते हैं। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया कि कतिपय मामलों में इस भाव के कथन कि करों की दरें नियत करने की शक्ति आवश्यक विधायी कृत्य नहीं है, बहुत विशाल हैं और यह कि 'यह अवधारित करने के लिए कि क्या प्रत्यायोजन के विषय में पर्याप्त मार्गदर्शन है, जिसे प्रत्यायोजन किया जाता है उस निकाय की प्रकृति भी ध्यान में लिया जाने वाला एक तथ्य है।' विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति का यह मत था कि यह तथ्य कि वह प्रत्यायोजन जनता के प्रति उत्तरदायी एक निर्वाचित निकाय को, किया गया था, जिसमें कर देने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित थे, कर की अयुक्तियुक्त दर अधिरोपित करने में निर्वाचित पार्षदों पर एक बहुत बड़ी रोक थी। इसके पश्चात् उन्होंने यह कहा—

> "वह मार्गदर्शन उस रूप में हो सकता है जिसमें कर की उन अधिकतम दरों का उपबन्ध किया गया हो जिन तक कोई स्थानीय निकाय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है, किसी स्थानीय निकाय को अपना विकल्प लेने का विवेकाधिकार दिया जा सकता है अथवा वह स्थानीय क्षेत्र के व्यक्तियों से परामर्श का उपबन्ध करने और परामर्श के पश्चात् दरें नियत करने का रूप ले सकता है। यह भी सम्भव है कि यह इस रूप में हो कि स्थानीय निकाय द्वारा नियत की जाने वाली दर को सरकार के अनुमोदन के अध्यधीन रखा जाए जो विधानमण्डल की ओर से इस विषय पर स्थानीय निकाय के कार्यों पर निगरानी रखने वाले के रूप में कार्य करती है। अन्य तरीके भी हो सकते हैं जिनमें मार्गदर्शन का उपबन्ध किया जा सके।"

35. **सीता राम बिशम्भर दयाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] में यू० पी० सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1948 की धारा 3-डी (1) ने ऐसी दरों पर कर उद्गृहीत करने का उपबन्ध किया था, जैसी राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए, जो उसमें विहित अधिकतम से अधिक न हो। न्यायाधिपति हेगडे ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया—

> "भले ही कोई कार्यपालिका की 'नई निरंकुशता' की कितनी ही निन्दा करे, आधुनिक समाज की जटिलता और जो मांग वह अपनी सरकार से करती है उसने ऐसी शक्तियों को गतिशील बना दिया है जिन्होंने विधानमण्डल के लिए यह नितांत आवश्यक बना दिया है कि वे कार्यपालिका के हाथ में अधिकाधिक शक्तियां सौंपें। पाठ्य-पुस्तक में

---

1 (1972) 2 एस० सी० आर० 141.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

मिलने वाले उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित सिद्धान्तों से अब काम चलने वाला नहीं है।"

36. इस संदर्भ में प्रत्यायोजन की कल्पना का स्पष्ट आशय समझ लेना आवश्यक है। प्रत्यायोजन एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय से दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय को शक्ति का पूर्णतः दिया जाना अथवा अन्तरण नहीं है। प्रत्यायोजन को किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय द्वारा उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय में निहित शक्तियों का प्रयोग दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय को सौंपे जाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें प्रतिसंहरण अथवा संशोधन की सम्पूर्ण शक्ति दाता अथवा प्रत्यायोजक में रहती है। इसकी विवक्षाओं को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि इस उपधारणा से कि प्रत्यायोजन में शक्ति का पूर्ण अधित्याग अथवा निराकरण अन्तर्वलित है अथवा अन्तर्वलित हो सकता है दुर्भाग्यवश बहुत ही भ्रान्तिपूर्ण विचार पैदा हो गए हैं। परिभाषा हो जाने पर इस बात का डर नहीं रहता है। प्रत्यायोजन में बहुधा किसी दूसरे को वैवेकिक प्राधिकार का दिया जाना अन्तर्वलित होता है किन्तु ऐसा प्राधिकार शुद्धतः व्युत्पत्तिक (डेरीवेटिव) है। अन्तिम शक्ति सदैव प्रत्यायोजक में रहती है और उसका कभी भी परित्याग नहीं किया जाता है।

37. **हथ बनाम क्लार्क**[1] में न्यायाधिपति विल्स ने यह मत व्यक्त किया है—

> "प्रत्यायोजन में, जिस प्रकार कि सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, प्रत्यायोजन करने वाले व्यक्ति द्वारा शक्तियों का त्याग विवक्षित नहीं है बल्कि वह ऐसे कार्य करने के प्राधिकार परिदत्त करने के प्रति संकेत करता है जो अन्यथा उस व्यक्ति ने स्वयं किए होते हैं.....जहां तक मुझे ज्ञात है विधि पर लिखने वालों ने इसका प्रयोग इस रूप में नहीं किया है कि इसमें यह बात विवक्षित हो कि प्रत्यायोजक व्यक्ति अपनी शक्ति का ऐसी रीति में त्याग कर देता है जिससे कि वह अपने अधिकारों से भी वंचित हो जाए।"

जॉन विलिस कृत 'प्रत्यायोजित शक्ति का और आगे प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता' (**'डेलीगेट्स नान प्रोटैस्ट डेलीगेयर'**)[2] का भी अवलोकन करें।

---

1 (1890) 25 क्यू० बी० डी० 391, 395.

2 21 कनेडियन बार रिव्यू 257.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

38. यदि प्रत्यायोजन के सिद्धान्त की इस आवश्यक प्रकृति को ध्यान में रखा जाए तो विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन और अधित्याग के सिद्धान्त के प्रश्न पर प्रमुख विनिश्चयों के सिद्धान्त को समझना कठिन नहीं है।

39. **हौज** बनाम **क्वीन**[1] में प्रिवी कौंसिल ने यह कहा है कि ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट की धारा 92 ने जो शक्तियां प्रदत्त की थीं उनका किसी भी भाव में प्रत्यायोजन द्वारा अथवा इम्पीरियल पार्लियामेण्ट के अभिकरणों के रूप में प्रयोग नहीं किया जाना था किन्तु धारा 92 द्वारा विहित सीमाओं के भीतर उतना ही पूर्ण और पर्याप्त प्राधिकार प्रदत्त किया था जितना कि इम्पीरियल पार्लियामेण्ट को पूर्ण शक्तियां प्राप्त थीं और वह उसे किसी दूसरे को दे सकती थी और यह कि इन विषयों और क्षेत्र के भीतर स्थानीय विधानमण्डल सर्वोच्च है और उसे वही प्राधिकार प्राप्त है, जोकि इम्पीरियल पार्लियामेण्ट को अथवा जो पार्लियामेण्ट आफ डोमीनियन को तद्सदृश परिस्थितियों के अधीन नगरपालिक संस्था अथवा अपने द्वारा बनाए गए किसी निकाय को अधिनियमिति में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत उपविधियां अथवा संकल्प बनाने और अधिनियमिति को प्रवर्तित और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से प्राधिकार प्रदत्त करने के लिए प्राप्त हुआ होता।

40. इस मामले में मुख्य तर्क यह है कि विधान के आनुषंगिक विनियम बनाने की शक्ति अधिकारातीत भले ही न हो, किन्तु किसी विधानमण्डल के लिए, केवल रूप रेखा मात्र उपबन्धित करने वाला विधान पारित करने और सरकार को बाकी ब्यौरों की पूर्ति करने के लिए सशक्त करना, प्रत्यायोजन नहीं बल्कि अधित्याग है, क्योंकि वह एक नई विधायी शक्ति को, अपनी नई हैसियत देगा, जो ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट द्वारा सृष्ट नहीं है, जिससे यह (ऐक्ट) अस्तित्व में आया।

41. लगभग 40 वर्ष पश्चात्, 1918 में **हौज** बनाम **क्वीन**[1] में अधित्याग का सिद्धान्त **क्लार्क वाले मामले**[2] में उठाया गया था जिसमें कनाडा के सुप्रीम कोर्ट ने ऐक्ट को कायम रखा था किन्तु ऐसा अभिनिर्धारित करने में न्यायाधीशों के तर्क अलग-अलग थे। उस ऐक्ट का नाम 'डोमीनियन वार मेजर्स ऐक्ट' (डोमीनियन युद्धोपाय अधिनियम) था जिसने गवर्नर जनरल को 'ऐसे विनियम बनाने के लिए सशक्त किया था जैसे वह कनाडा की सुरक्षा, रक्षा, शान्ति, व्यवस्था

---

1 (1883) एल० आर० 9 ए० सी० 117.

2 (1890) 25 क्यू० बी० डी० 391, 395.

और कल्याण के लिए वास्तविक अथवा आशंकित युद्ध·····के कारण आवश्यक अथवा उचित समझे।" यह तर्क दिया गया था कि विधान ने डोमीनियन पार्लियामेण्ट की विधायी शक्ति कार्यपालक प्राधिकारी को अन्तरित कर दी थी। न्यायाधिपति एंग्लिन का यह विचार था कि ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट ने "पूर्ण अधित्याग" प्रतिषिद्ध किया था, किन्तु प्रकटतः उस पद को बहुत ही संकुचित अर्थ दिया था क्योंकि इसके आगे उन्होंने उसको इस रूप में उल्लिखित किया है "जो ऐसा है जिसके बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि उस प्रकार के किसी कार्य को करने के प्रयत्न की संवैधानिकता पर विचार किए जाने की आवश्यकता है" और अभिव्यक्त रूप से यह कहा कि डोमीनियन पार्लियामेण्ट को प्रत्यायोजन का उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना कि इम्पीरियल पार्लियामेण्ट को। न्यायाधिपति डफ का भी यह विचार था कि ऐक्ट में 'परित्याग' के विरुद्ध विवक्षित प्रतिषेध है। किन्तु उनके अनुसार विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन, चाहे वह कितना भी विस्तृत हो, 'परित्याग' की कोटि में नहीं आएगा क्योंकि विनियम बनाने वाली कार्यपालिका उस विधानमण्डल का अभिकर्ता नहीं है, जो सदैव अपने प्राधिकार को वापस ले सकता है। उनके अनुसार; "परित्याग" का प्रतिषेध बिन्दु तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक विधानमण्डल की ओर से कार्यपालिका पर नियन्त्रण के परित्याग का आशय वास्तव में नियन्त्रण का परित्याग न हो। इन मतों की भिन्नता के बावजूद भी न्यायाधीशों ने सहमत रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि ऐक्ट द्वारा अनुध्यात अत्यधिक विस्तृत प्रत्यायोजन के प्रति और "निराकरण" शब्द को बहुत संकुचित अर्थ देने के बारे में कोई सांविधानिक आक्षेप नहीं किया जा सकता है।

42. दुर्भाग्य से **ग्रे वाले मामले में**[1] एक युद्धकालीन मामला था और विधि व्यवसाय की प्रवृत्ति युद्धकालीन मामलों को दोषदर्शी रूप में देखने की और स्वाभाविक रूप से सन्देह करने की है।

43. **इनिशियेटिव एण्ड रिफ्रेण्डम ऐक्ट वाले मामले**[2] में वाईकाउण्ट हालडेन ने यह कहा कि ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट की धारा 92 द्वारा किसी प्रान्त में विधायी शक्ति केवल उसके विधानमण्डल को ही प्रदत्त की जाती है और इसके आगे यह कथन किया, जो प्रायः उद्धृत किया जाता है—

> "इस बाबत कोई सन्देह नहीं है कि एक ऐसा निकाय, जिसे उसको सौंपे गए विषयों पर विधान बनाने की उतनी विस्तृत शक्ति है जितनी

1 57 एस० सी० आर० 150.

2 (1919) ए० सी० 935.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

कि कनाडा के प्रान्तीय विधानमण्डल को प्राप्त है, अपनी हैसियत को यथावत् रखते हुए अधीनस्थ अभिकरणों की सहायता ले सकता है जैसा कि × × × **हौज** बनाम **क्वीन** में × × × (किन्तु) इसका यह अर्थ नहीं है कि ये ऐसी नई विधायी शक्ति बना सकता है और उसे अपनी हैसियत प्रदत्त कर सकता है, जो विधायी शक्ति ऐक्ट द्वारा नहीं बनाई गई है और जिस (ऐक्ट) के माध्यम से वह (निकाय) स्वयं अस्तित्व में है।"

44. **शैनन** बनाम **लोअर मेनलैण्ड डेरी प्रोडक्ट्स बोर्ड**[1] में प्राय: यह आक्षेप किया गया था कि "प्रस्तुत मामले में प्रान्तीय विधानमण्डल ने वस्तुत: अपने विधायी उत्तरदायित्व का दूसरे निकाय को अभ्यर्पण कर दिया है" और प्राथिक रूप से लार्ड हालडेन की उक्ति को उद्धृत किया गया था। प्रिवी कौंसिल ने ब्रिटिश कोलम्बिया के अटर्नी जनरल से उत्तर तक नहीं मांगा और लार्ड एटकिन के निम्नलिखित सारगर्भित वाक्य में उस आक्षेप का उत्तर दिया—

> "प्रान्तीय विधानमण्डल अपने नियत क्षेत्र में उसी प्रकार सर्वोच्च है जिस प्रकार कोई अन्य संसद (पार्लियामेण्ट), और उन बहुत-से अवसरों को प्रगणित कराने की आवश्यकता नहीं है जब प्रान्तीय विधानमण्डलों, डोमीनियन और इम्पीरियल विधानमण्डलों ने बहुत से व्यक्तियों और निकायों को वैसी ही शक्तियां सौंपी जैसी इस ऐक्ट में हैं।"

45. यह बात सुविदित है कि आंग्ल संसद विधान द्वारा अपनी पसन्द के किसी निकाय को पार्लियामेण्ट के किसी कार्य में उपान्तरण अथवा उसमें परिवर्धन करने की शक्ति दे सकती है (सभी आंग्ल स्टैट्यूटरी नियमों और आदेशों की वैधता इससे व्युत्पन्न होती है)।

46. **क्वीन** बनाम **बुरा**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारतीय विधानमण्डल किसी भी अर्थ में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का अभिकर्ता अथवा प्रत्यायुक्त नहीं था, यह कि भारतीय विधानमण्डल को अपनी शक्तियों की सीमाओं के भीतर विधान की पूर्ण शक्तियां उतनी विस्तृत रूप में और उसी प्रकृति की प्राप्त थीं, जैसी ब्रिटिश पार्लियामेण्ट को प्राप्त थीं। और यह कि विधान बनाने की पूर्ण शक्तियों में उन्हें आत्यन्तिक रूप से अथवा सशर्त रूप से विधान बनाने की शक्ति प्राप्त थी। विधायी शक्ति के विधिमान्य प्रत्यायोजन की पूर्ण अपेक्षा के रूप में प्रिवी कौंसिल ने यह अपेक्षा

---

1 (1938) ए० सी० 708 प्रिवी कौंसिल.

2 (1878) 5 इण्डियन अपील्स 178.

नहीं की थी कि विधि में कोई नीति अथवा मानक अधिकथित किया जाना चाहिए और न ही इसने प्रत्यायोजित विधान के किसी अन्य मामले में ऐसा किया था। वास्तव में ऐसी अपेक्षा इसके द्वारा अभिपुष्ट इस सिद्धान्त के विरुद्ध है कि भारतीय विधानमण्डल अपनी शक्तियों की सीमाओं के भीतर उतना ही विस्तृत और उसी प्रकृति का है जिस प्रकार स्वयं ब्रिटिश पार्लियामेण्ट और जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है इस बारे में कभी भी सन्देह नहीं किया गया है कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट मार्गदर्शन के लिए कोई नीति अथवा मानक अधिकथित किए बिना विधायी शक्तियों का प्रत्यायोजन कर सकती है।

47. **दिल्ली लॉज़ ऐक्ट, 1912 के मामले**[1] में इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था और सभी सुसंगत विनिर्णयों पर विचार किया गया था किन्तु उस विनिश्चय से कोई आबद्धकर सिद्धान्त निकाल पाना कठिन है। **काठी रेंनिंग रावत** बनाम **सौराष्ट्र राज्य**[2] में इस विनिश्चय पर विचार करते हुए मुख्य न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री ने यह कहा—

> "जब कि इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि न्यायाधीशों के, जिन्होंने कतिपय विनिर्दिष्ट अधिनियमितियों की सांविधानिकता की बाबत विनिश्चय में भाग लिया, बहुमत से किए गए कुछ निश्चित निष्कर्ष थे, हर एक मामले में तर्क भिन्न था और यह कहना कठिन है कि बहुमत ने कोई ऐसा विशिष्ट सिद्धान्त अधिकथित किया है जो अन्य मामलों के अवधारण में सहायक हो सकता है।"

किन्तु उस विनिश्चय के बारे में सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि उसमें यह सिद्धान्त अधिकथित किया गया था कि विधानमण्डल को अपने आवश्यक विधायी कृत्य का अन्तरण करके उसका अधित्याग नहीं करना चाहिए और इस प्रकार आत्मविलोपन नहीं करना चाहिए।

48. **दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन** बनाम **बिरला कॉटन एण्ड स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स**[3] में, जिसके प्रति पहले ही निर्देश किया जा चुका है, न्यायाधिपति सीकरी ने, (जैसे कि वह उस समय थे) अपने सहमतिपूर्ण निर्णय में यह दृष्टिकोण अपनाया है कि धारा 113 में "अधिनियम के प्रयोजनों" पद में 'पर्याप्त मार्गदर्शन अथवा नीति' है। किन्तु प्रत्यायोजन को मान्य ठहराने के लिए

---

1 (1951) एस० सी० आर० 747.
2 (1952) एस० सी० आर० 435.
3 (1968) 3 एस० सी० आर० 251.

मुख्य न्यायाधिपति वांचू द्वारा अपने निर्णय में उल्लिखित सुरक्षोपायों का अवलम्ब लेना आवश्यक नहीं था। उन्होंने यह कहा—

> "नज़ीर के अलावा मेरा यह दृष्टिकोण है कि संसद को अधीनस्थ निकायों को विधायी प्राधिकार प्रत्यायोजित करने की पूर्ण शक्ति है। मेरा यह विचार है कि यह शक्ति संविधान के अनुच्छेद 246 से प्राप्त होती है। 'अनन्य' शब्द का अर्थ किसी अन्य विधानमण्डल का अपवर्जन करते हुए अभिप्रेत है न कि किसी अन्य अधीनस्थ निकाय का अपवर्जन करते हुए। किन्तु इस बाबत एक निर्बन्धन है और वह भी अनुच्छेद 246 में ही है।
>
> संसद को सुसंगत सूची की किसी मद अथवा मदों की बाबत ही विधि पारित करनी चाहिए। नकारात्मक रूप में उसका यह अर्थ है कि संसद अपने कृत्यों का अधित्याग नहीं कर सकती। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्टों (भारत शासन अधिनियमों) के अधीन यही स्थिति थी और संविधान ने इस बाबत कोई भेद नहीं किया है। मैं समझता हूं कि (1883) 9 ए० सी० 117 और (1885) 10 ए० सी० 282 द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भारतीय विधानमण्डलों जैसे विधानमण्डलों को, विधीय प्राधिकार अधीनस्थ निकायों को प्रत्यायोजित करने की संपूर्ण शक्ति प्राप्त थी। इन मामलों के निर्णयों में 'नीति', 'मानक' अथवा 'मार्गदर्शन' जैसा कोई भी शब्द प्रयोग में नहीं आये है।"

49. **जैकब लिचटर** बनाम **युनाइटेड स्टेट्स**[1] में सुप्रीम कोर्ट ने नेगोसियेशन्स ऐक्ट की विधिमान्यता को कायम रखा। उस ऐक्ट में युद्धकालीन संविदाओं पर पुनः बातचीत करने का उपबन्ध था और प्रशासनिक अधिकारियों को उन फायदों की वसूली करने के लिए प्राधिकृत किया गया था जिनके बारे में वे यह अभिनिर्धारित करें कि वे आधिक्य में हैं। ऐसे फायदे इस रूप में परिभाषित किए गए थे कि उनका अर्थ 'संविदा की कोई ऐसी रकम अथवा उपसंविदा कीमत है, जो पुनः बातचीत के परिणामस्वरूप अधिक फायदों के रूप में उपलब्ध होती है जिसका दूसरे शब्दों में यह अभिप्राय है कि अधिक फायदे से अभिप्रेत

---

[1] 344 यू० एस० 742.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

है अधिक फायदे। न्यायालय ने प्रत्यायोजित विधान के आधार पर चुनौती को यह कहते हुए नामंजूर कर दिया—

> "उस क्षेत्र में जहां नम्यता और निरंतर रूप से बदलती हुई स्थितियों के अनुकूल कांग्रेस की नीति को ढालना ही कार्यक्रम का मर्म है वहां यह आवश्यक नहीं है कि कांग्रेस प्रशासनिक पदधारियों को उनके मार्गदर्शन के लिए विनिर्दिष्ट सिद्धान्त का उपबन्ध करे। 'अधिक फायदे' वाला कानूनी पद उस संदर्भ में उसे संवैधानिक बनाने के लिए विधायी नीति और मानकों की पर्याप्त अभिव्यक्ति था।"

जहां तक संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति का सम्बन्ध है, **स्वार्ज**[1] ने उसे संक्षिप्त में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

> ".....यदि वैसे मानकों को उपयुक्त अभिनिर्धारित किया जाता है जैसे कि रिनेगोसियेशन एण्ड कम्युनिकेशन्स ऐक्ट्स में हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मानकों की अपेक्षा जितनी दिखावे के लिए है उतना उसमें सार नहीं है। यदि कांग्रेस के कृत्य का परित्याग नहीं हुआ है, जैसा कि सेस्टर वाले मामले में हुआ था, तो समर्थ बनाने वाली विधि की पुष्टि की जाएगी, भले ही वह एकमात्र मानक, जो न्यायालय को मिल सके, इतना अनिश्चित हो कि वह लगभग अवास्तविक हो।"

50. आस्ट्रेलिया में भी स्थिति वही है। **विक्टोरियन स्टीवडोरिंग जनरल कॉन्ट्रेक्टिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **डिगनन**[2] में न्यायाधिपति डिक्सन ने यह मत व्यक्त किया है कि विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन की बाबत आक्षेप इस बात पर आधारित नहीं था कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त ऐसे प्रत्यायोजन को प्रतिषिद्ध करता है। उन्होंने यह कहा कि **हडार्ट पार्कर लिमिटेड** बनाम **कामनवैल्थ**[3] में न्यायाधीशों ने विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन के विरुद्ध लगाए गए आक्षेप का उत्तर यह मत व्यक्त करते हुए दिया कि **रोश** बनाम **क्रोनहाइमर**[4] में ऐसे प्रत्यायोजन की विधिमान्यता को कायम रखा गया था तब वास्तव में उसका यह अभिप्राय यह था कि यह कहने का समय बीत गया कि पार्लियामेंट को ऐसी विधि बनाने से, जो कार्यवाहियों को प्रधानतः विधायी प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाली हो निर्बन्धित करने वाला प्रभाव आस्ट्रेलिया के संविधान में शक्तियों के प्रथक्करण

---

1 अमेरिकन एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, द्वितीय संस्करण पृ० 41.

2 (1931) 46 सी० एल० आर० 73.

3 (1931) 44 सी० एल० आर० 492.

4 (1921) 29 सी० एल० आर० 329.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

का था। जब कि तार्किक रूप से अथवा सैद्धान्तिक रूप से विधायी शक्ति अनन्य रूप से पार्लियामेण्ट की ही थी, अधीनस्थ विधानों को प्राधिकृत करने की पार्लियामेण्ट की शक्ति का आधार अधिकांशतः ब्रिटिश विधान की प्रथा और आंग्ल विधि का सिद्धान्त था और निर्णयाधार चाहे कुछ भी हो, **रोश** बनाम **क्रोनहाइमर**[1] वाले विनिश्चय का अनुसरण किया ही जाना चाहिए और उस निर्णय के अनुसार सही 'दृष्टिकोण यह है कि विधायी शक्ति में प्रत्यायोजन की शक्ति स्वयं ही सम्मिलित है' (वाइंस कृत—'लैजिस्लेटिव, जुडीशियल एण्ड एक्ज़ीक्यूटिव पावर्स' चौथा संस्करण, पृष्ठ 118 भी देखें)।

51. अन्तिम विश्लेषण यह है कि **देवी दास गोपाल कृष्ण** बनाम **पंजाब राज्य**[2] में मुख्य न्यायाधिपति सुब्बाराव के अनुसार जो कुछ प्रतिषिद्ध है वह विधानमण्डल द्वारा अधीनस्थ निकायों को मनमानी शक्ति का, अपने लिए उस निकाय के ऊपर कोई नियन्त्रण आरक्षित किए बिना, प्रदत्त किया जाना है और दूसरे अधिकरण के पक्ष में या तो पूर्णतः या भागतः विधायी शक्ति का आत्मविलोपन है। दूसरे शब्दों में, विधानमण्डल को अपने अनिवार्य कृत्यों का अधित्याग नहीं करना चाहिए। उसके पश्चात् जो प्रश्न बचा और जिसका उत्तर दिया जाना चाहिए वह यह है कि कोई विधानमण्डल अपने विधायी कृत्य का अधित्याग कब करता है ?

52. 'अधित्याग' का सिद्धान्त **पनामा रिफाईनिंग कम्पनी** बनाम **रियन**[3] में यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट द्वारा वर्जित "अनिवार्य विधाय कृत्यों का दूसरों को अन्तरण" की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम अस्पष्ट, अस्थिर और अनिश्चित नहीं है। लार्ड हालडेन के अनुसार कोई भी विधानमण्डल तब तक 'अधित्याग' नहीं करता जब तक वह उस क्षेत्र से अपने आप को नहीं हटा लेता और उसके लिए अपने उत्तरदायित्व का अभ्यर्पण नहीं कर देता। किन्तु कुछ अन्य न्यायाधीशों के अनुसार "अधित्याग" तब होता है, जब जब कोई विधानमण्डल, उस क्षेत्र में रहते हुए और उसके लिए अपने उत्तरदायित्वों को बनाए रखते हुए, अपने द्वारा अधिकथित निश्चित मानक अथवा प्रयोजन से अन्यथा, नीति की संरचना दूसरों को सौंप देता है।

53. **दिल्ली लॉज़ ऐक्ट, 1912 वाले मामले**[4] में मुख्य न्यायाधिपति कानिया ने यह कहा कि यदि जो कुछ विधानमण्डल कर सकता है ऐसा करने

---

[1] (1921) 29 सी० एल० आर० 329.

[2] (1967) 3 एस० सी० आर० 557.

[3] 293 यू० एस० 388.

[4] (1951) एस० सी० आर०747.

की समस्त शक्तियां अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रदत्त कर दी जाती हैं,यद्यपि ऐसी-शक्ति को वापस लेकर अथवा अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित अधिनियमों को निरस्त कर के अधीनस्थ प्राधिकारी के कार्य को नियन्त्रित करने की शक्ति को विधानमण्डल अपने पास रखे रखता है, तो ऐसी शक्ति प्रदत्त करने वाले विधानमण्डल का कोई अधित्याग अथवा आत्मविलोपन नहीं होता। न्यायाधिपति फजल अली ने यह मत व्यक्त किया कि इस देश में प्रत्यायोजन करने की विधानमण्डल की शक्ति पर केवल दो मुख्य बन्धन हैं और वे उसका सुविवेक और यह सिद्धान्त है कि इसे वह सीमा पार नहीं करनी चाहिए जिसके परे प्रत्यायोजन 'अधित्याग और आत्मविलोपन' की कोटि में आता है। न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री का यह मत था कि विधायी प्राधिकार का प्रत्यायोजन नई विधायी शक्ति के सृजन से भिन्न है। पूर्वकथित स्थिति में, प्रत्यायोजन करने वाला निकाय अपना आत्मविलोपन नहीं करता, बल्कि अपनी विधायी शक्ति यथावत् रखता है और किसी अभिकरण अथवा अपनी पसन्द के किसी माध्यम की मार्फत ऐसी शक्ति के प्रयोग का विकल्प मात्र लेता है। पश्चात्कथित स्थिति में, अधीनस्थ इकाइयों को शक्ति का कोई प्रत्यायोजन नहीं होता बल्कि वह किसी स्वतन्त्र और समन्वित निकाय को स्वबल से प्रवृत्त होने वाली विधियां बनाने की शक्ति का प्रदाय है। प्रथमतः प्रत्यायोजन को प्राधिकृत करने के लिए कोई अभिव्यक्त उपबन्ध अपेक्षित नहीं है। संवैधानिक निषेध के अभाव में विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन, चाहे वह कितना भी विस्तृत हो, तब तक किया जा सकता है जब तक कि प्रत्यायोजन करने वाला निकाय अपनी विधायी शक्ति यथावत् रखता है। न्यायाधिपति महाजन की यह राय थी कि विधानमण्डल ऐसे किसी अन्य निकाय के निर्णय, प्रज्ञा और देशभक्ति को उनके स्थान में प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है जिनको ही केवल जनता ने अपने सर्वोच्च विश्वास के योग्य समझा हो और यह दृष्टिकोण कि, जब तक अभिव्यक्त रूप से प्रतिषेध न किया गया हो, विधानमण्डल को अपने विधायी कृत्य अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित करने की सामान्य शक्ति है, नज़ीर अथवा सिद्धान्त से समर्थित नहीं है। न्यायाधिपति मुखर्जी का यह दृष्टिकोण था कि यह नहीं कहा जा सकता कि स्वयं विधायी शक्ति में प्रत्यायोजन का असीमित अधिकार अन्तर्निहित है और विधानमण्डल को उन आवश्यक विधायी कृत्यों को अपने हाथ में रखना चाहिए जिनमें विधायी नीति का घोषित करना और उस मानक का अधिकथित करना आता है जिसे विधि के नियम के रूप में अधिनियमित किया जाना है। न्यायाधिपति दास ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यायोजन की शक्ति विधायी शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक और उसकी आनुषंगिक है और इसका

1973(12) eILR(PAT) SC

संघटक भाग है। प्रत्यायोजन करने की शक्ति की एकमात्र शर्त यह है कि विधानमण्डल, अपनी हैसियत को यथावत् रखे बिना, एक नई विधायी शक्ति का सृजन नहीं कर सकता और और उसे अपनी हैसियत प्रदत्त नहीं कर सकता जो अधिनियम द्वारा सृजित अथवा प्राधिकृत नहीं है जिसके कारण यह (विधानमण्डल) स्वयं अस्तित्व में है। न्यायाधिपति बोस ने यह मत व्यक्त किया कि भारतीय संसद् **क्वीन** बनाम **बूरा**[1] के आधार पर विधान बना सकती है अर्थात् यह कि यह किसी अन्य व्यक्ति अथवा निकाय के लिए उन विधियों का पुरःस्थापित किया जाना अथवा लागू किया जाना छोड़ सकती है जो उस समय भारत के किसी ऐसे भाग में विद्यमान हैं अथवा हो सकती हैं, जो संसद् के विधायी नियन्त्रण के अधीन हैं।

54. **काब एण्ड कम्पनी लिमिटेड** बनाम **क्राप**[2] में यह प्रश्न था कि क्या आक्षेपित अधिनियमों के अधीन क्वीन्सलैण्ड विधानमण्डल को कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट को, लाइसेन्स और परिमिट फीस अधिरोपित करने और उद्गृहीत करने की शक्ति से विनिहित करने का विधायी प्राधिकार था। माननीय न्यायाधीशों के समक्ष इस बात पर विवाद नहीं था कि जो फीस अधिरोपित की गई थी उसे कराधान समझा जाना था। तदनुसार यह दलील दी गई थी कि विधानमण्डल ने कराधान उद्गृहीत करने की अपनी अनन्य शक्ति का अधित्याग कर दिया था प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्वीन्सलैण्ड विधान-मण्डल उन उद्देश्य और प्रयोजनों को पूरा करने के लिए जो उसके विचार और परिकल्पना में थे, किसी अभिकरण अथवा अधीनस्थ अभिकरण एवं किसी ऐसे तन्त्र का, जिसे वह समुचित समझे, और कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट का लाइसेन्स और परमिट फीस नियत करने और वसूल करने के माध्यम के रूप में उपयोग कर सकता था परन्तु यह तब तक जब कि इसने अपनी हैसियत यथावत् रखी हो और उसके ऊपर पूर्ण नियन्त्रण बनाए रखा हो यह कि इस प्रकार यह किसी भी समय विधान को निरस्त कर सकता था और ऐसा प्राधिकार और विवेकाधिकार वापस ले सकता था जैसा कि इसने उसमें निहित किया हो, करों को उद्गृहीत करने की अपनी सर्वोच्च शक्ति इसने समनुदिष्ट अन्तरित अथवा निराकृत नहीं किया था और न ही इसने नए रूप से सृजित विधायी प्राधिकारी के पक्ष में अपने उत्तरदायित्वों का परित्याग अथवा अधित्याग ही किया था और

---

[1] (1878) 5 इण्डियन अपील्स 178.

[2] (1967) 1 ए० सी० 141.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

तदनुसार ये दोनों ऐक्ट विधिमान्य हैं। बर्थ-इ-गोस्ट के लार्ड मोरिस ने यह कहा—

> "जो कुछ उन्होंने (विधानमण्डल ने) ट्रान्सपोर्ट ऐक्टों को पारित करके सृजित किया, उसे युक्तियुक्त रूप से नई विधायी शक्ति अथवा पृथक् विधायी निकाय नहीं कहा जा सकता, जो सामान्य विधायी प्राधिकार से सम्पन्न हो (**आर०** बनाम **बराह** : 3 ए० सी० 889 देखें)। न ही क्वीन्सलैण्ड विधानमण्डल ने किसी ऐसी नई विधायी शक्ति का सृजन किया और अपनी निजी हैसियत उसे प्रदान की, जो उस ऐक्ट द्वारा बनाई गई न हो जिस पर उसका (विधानमण्डल का) अस्तित्व निर्भर है (**इनिशियेटिव एण्ड रिफ्रेण्डम ऐक्ट वाला मामला** देखें : (1919) एस० सी० 935-945)।

जिस बात को महत्व दिया जाना है—और यह निर्णायक है, वह यह माननीय न्यायाधिपतियों का यह कथन है कि विधानमण्डल ने अपनी हैसियत यथावत् रखी थी और कमिश्नर फार ट्रान्सपोर्ट के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण बनाए रखा था। क्योंकि यह किसी भी समय विधान को निरस्त कर सकता था और उस प्राधिकार और विवेकाधिकार को वापस ले सकता था जो उसने उसमें निहित किया था और इसलिए विधानमण्डल ने अपने कृत्यों का अधित्याग नहीं किया था।

न्यायाधिपति डफ ने **ग्रे वाले मामले**[1] में यह कहा—

> "संसद् (पार्लियामेण्ट) का स्थान कार्यपालिका को देने का ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया गया था जिसका अभिप्राय सांविधानिक प्राधिकार के वर्तमान संतुलन में विघ्न डालना हो × × × अनुदत्त शक्तियों द्वारा किसी भी समय प्रतिसंहृत किया जा सकता था और उनके अधीन की गई किसी बात को संसद् द्वारा अकृत किया जा सकता था, उस संसद् द्वारा जिसने अपनी विधायी अधिकारिता का परित्याग न तो किया था और न कर सकती थी।"

55. यह कहा गया है कि विधि निर्माण शक्ति का प्रत्यायोजन आधुनिक सरकार को गति प्रदान करने वाला मुख्य साधन है। विधानमण्डल द्वारा प्रत्यायोजन इसलिए आवश्यक है कि विधायी शक्ति का प्रयोग निरर्थक न् हो जाए। आज जब कि सैद्धान्तिक रूप में समर्थन विधायी प्रभुत्व का ही किया जाता है, हम देखते यही हैं कि कार्यपालिका को अधिकाधिक शक्ति प्राप्त होती जा रही है।

[1] 57 एस० सी० आर० 150.

1973(12) eILR(PAT) SC

यथापूर्व स्थिति के परम्परागत औचित्य स्थापन से विचलन अविश्वास को जन्म देता है। विधानमण्डल किसी एक प्रशासनिक शाखा की अपेक्षा विभिन्न हितों का संधिस्थल है। यह बहुत कम सम्भाव्य है कि उसमें किन्हीं विशेष हितों की प्रधानता हो। अतः हमें हल्के तौर पर यह नहीं कहना चाहिए कि प्रत्यायोजन के रूप में विधायी शक्ति का अन्तरण हो सकता है, जो कि अधित्याग की कोटि में आएगा। साथ ही हमें इस व्यावहारिक वास्तविकता से भी अवगत रहना चाहिए जो यह है कि संसद् सभी विधायी विषयों पर विचार नहीं कर सकती। अधित्याग का सिद्धान्त एक मूलभूत प्रजातान्त्रिक संकल्पना को अभिव्यक्त करता है किन्तु साथ ही हमें यह आग्रह नहीं करना चाहिए कि विधि बनाने का कार्य अनन्य रूप से विधानमण्डल का ही क्षेत्र है। सरकार का उद्देश्य वांछनीय बताए गए उद्देश्यों के लिए स्वीकृति प्राप्त करे और जहां तक सम्भव हो पूर्ण रूप में उनको प्राप्त करे। विधि बनाना उस प्रयोजन को प्राप्त करने का साधन मात्र है। यह अपने आप में उद्देश्य नहीं है। उस उद्देश्य को विधानमण्डल द्वारा विधि बना कर ही प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु विधान के बहुत से विषय ऐसे हैं जिनके लिए विशेषज्ञता, तकनीकी जानकारी और बदलती हुई स्थितियों के अनुसार कुछ अनुकूलन की अपेक्षा होती है जो हो सकता है कि संसद् को प्राप्त न हो और इसलिए यह उद्देश्य विधायी शक्ति के विस्तृत प्रत्यायोजन द्वारा बेहतर रूप में प्राप्त किया जाता है। यदि विधानमण्डल से यह अपेक्षा की जाए कि वह उन बेशुमार स्थितियों का अनुमान पहले से करे, जिन पर यह चाहता है कि किसी विशेष नीति को लागू करे और हर स्थिति के लिए विनिर्दिष्ट नियम विरचित करे, तो विधायी प्रक्रिया आए दिन ठप हो जाया करेगी। बहुत-से कानूनों में हैनरी अष्टम खण्ड*विस्तृत प्रत्यायोजन की आवश्यकता का सूचक है। किसी कानून के उपबन्ध अथवा उसकी उद्देशिका के शब्दों में न्यायालय द्वारा विधायी नीति अथवा मार्गदर्शन की खोज कोई ज्ञानवर्धक प्रयास नहीं है। यह स्पष्ट नहीं है कि यह कहने से सिद्धान्त रूप में क्या अन्तर पड़ता है कि चूंकि प्रत्यायोजन प्रतिनिधि निकाय को किया जाता है इसलिए वह इस बात की गारण्टी है कि प्रत्यायुक्त उस शक्ति का अयुक्तियुक्त रूप से प्रयोग नहीं करेगा, क्योंकि यदि मूल कल्पना का ध्यान रखा जाए तो विधानमण्डल को चाहिए कि आवश्यक विधायी कृत्यों का पालन वही करे। निश्चित रूप से केवल इससे संतोष नहीं किया जा सकता है कि जिस निकाय को कृत्यों का प्रत्यायोजन किया गया है, उसकी हैसियत प्रतिनिधि वाली है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई मार्गदर्शन का उपबन्ध नहीं है अथवा कोई

*कठिनाइयों का निराकरण खण्ड

नीति अधिकथित नहीं की गई है तो इस तथ्य से कि प्रत्यायुक्त की हैसियत प्रतिनिधि जैसी है, सिद्धान्त रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

56. यह देख लेने के बाद कि अधिनियम की धारा 8 (2) (ख) द्वारा संसद् ने राज्य विधानमण्डल को किसी शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं किया है, प्रश्न यही है कि क्या संसद् ने जब स्थानीय विक्रयों पर कराधान करने के लिए राज्य विधानमण्डलों द्वारा नियत की जाने वाली दरों को अपनाने का निर्णय किया तो उसने अपने विधायी कृत्य का अधित्याग कर दिया ।

57. काउन्सेल ने यह कहा कि जब राज्य विधानमण्डल अपनी विक्रय कर विधि को बनाता है अथवा समय-समय पर उसमें संशोधन अथवा परिवर्तन करता है तो यह संसद् के प्रत्यायुक्त के रूप में कार्य नहीं करता । यह अपने क्षेत्र के अंदर विधायन की पूरी शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रभुत्व सम्पन्न विधानमण्डल के रूप में कार्य करता है और, उस क्षेत्र के अंदर विधान बनाते समय, यह किसी बाहरी अभिकरण के जिसमें संसद् भी है, मार्गदर्शन अथवा नियन्त्रण के अधीन नहीं है । अतः कर की जो दरें राज्य विधानमण्डल द्वारा समय-समय पर नियत की जाएंगी वे स्थानीय विक्रयों पर कर लगाने की दरें होंगी जिन का संसद् द्वारा किसी नीति के बनाए जाने से कोई सरोकार नहीं होगा और संसद् उन दरों को केन्द्रीय कर के लिए यह न जानते हुए भी अपनाएगी कि भविष्य में नियत होने पर वे क्या होंगी । काउन्सेल ने अपने इस निवेदन के समर्थन में **बी० शमा राव** बनाम **पाण्डिचेरी संघ राज्यक्षेत्र**[1] वाले मामले का ज़ोरदार रूप से अवलम्ब लिया है ।

58. उस मामले में, पाण्डिचेरी संघ राज्य-क्षेत्र की विधानसभा ने पाण्डिचेरी जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट (1965 का 10) पारित किया था जो तारीख 30 जून, 1965 को प्रकाशित हुआ था । उस ऐक्ट की धारा 1 (2) में यह उपबन्ध था कि यह (ऐक्ट) उस तारीख को प्रवृत्त होगा जिसे पाण्डिचेरी सरकार अधिसूचना द्वारा नियत करे, और धारा 2 (1) में यह उपबन्ध था कि पाण्डिचेरी ऐक्ट के प्रारम्भ के ठीक पूर्व मद्रास राज्य में यथा प्रवृत्त मद्रास जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 पाण्डिचेरी को कतिपय उपान्तरों के अधीन विस्तारित किया जाएगा, जिन में से एक, अपील अधिकरण के गठन के सम्बन्ध में था । इस ऐक्ट में एक अनुसूची भी अधिनियमित की गई थी जिसमें माल का वर्णन उद्ग्रहण, का बिन्दु और करों की दरें दी गई थीं । पाण्डिचेरी सरकार ने तारीख 1 मार्च, 1966 को एक अधिसूचना निकाली जिसमें प्रारम्भ होने की तारीख 1 अप्रैल, 1966 नियत की

---

1 (1967) 2 एस० सी० आर० 650.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

गई थी। मद्रास विधानमण्डल ने अधिसूचना जारी करने के पूर्व मद्रास ऐक्ट का संशोधन कर दिया था और परिणामतः तारीख 1 अप्रैल, 1966 को यथा संशोधित मद्रास ऐक्ट था जो पाण्डिचेरी में प्रवृत्त हुआ। जब वह ऐक्ट प्रवृत्त हो गया तो पिटीशनर पर एक सूचना की तामील की गई जिसमें उससे यह अपेक्षा की गई कि वह अपने आप को एक व्यवहारी के रूप में रजिस्ट्रीकृत कराए और तब उसने ऐक्ट की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए एक रिट पिटीशन फाइल किया। पिटीशन के फाइल होने के पश्चात्, पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने पाण्डिचेरी जनरल सेल्स टैक्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट (1966 का 13) पारित किया जिसके द्वारा मूल ऐक्ट की धारा 1 (2) को इस प्रकार संशोधित किया गया था जिससे कि उस से यह समझा जाए कि पश्चात्कथित ऐक्ट "1966 की प्रथम अप्रैल को प्रवृत्त होगा।" यह भी उपबन्ध किया गया था कि उद्गृहीत और संगृहीत किए गए सभी करों के बारे में और की गई सभी कार्यवाहियों और कार्यों को विधिमान्य समझा जाएगा मानों यथा संशोधित मूल ऐक्ट ही सभी सुसंगत समयों पर प्रवृत्त था।

59. न्यायालय ने बहुमत से यह भी अभिनिर्धारित किया कि पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने न केवल वह मद्रास ऐक्ट अपनाया जो उस तारीख को प्रवृत्त था। जब इसने मूल ऐक्ट पारित किया, बल्कि सारतः यह भी अधिनियमित किया कि यदि मद्रास विधानमण्डल, पाण्डिचेरी पर इसके विस्तारण की अधिसूचना से पूर्व, अपने ऐक्ट को संशोधित करता है, तो संशोधित ऐक्ट ही है जो लागू होगा; यह कि विधानमण्डल उस प्रक्रम पर यह प्रत्याशा नहीं कर सकता था कि मद्रास ऐक्ट का संशोधन नहीं किया जाएगा और न ही वह समझ सकता था कि क्या संशोधन पारित होंगे अथवा वे व्यापक प्रकार के होंगे अथवा वे पाण्डिचेरी के लिए उपयुक्त होंगे और यह कि परिणाम यह हुआ कि पाण्डिचेरी विधानमण्डल ने संशोधित ऐक्ट को स्वीकार किया, यद्यपि यह इससे अवगत नहीं था और न हो सकता था कि संशोधित ऐक्ट के उपबन्ध क्या होंगे। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह स्थिति इन परिस्थितियों में विक्रय कर विधान के विषय में पाण्डिचेरी विधान सभा द्वारा मद्रास विधानमण्डल के पक्ष में से सम्पूर्ण अभ्यर्पण की थी। न्यायालय ने, **इनिशियेटिव एण्ड रिफ्रेण्डम ऐक्ट वाले मामले** में, लार्ड हालडेन के इस बहु-उद्धृत सिद्धान्त के प्रति कि कनाडा में किसी प्रान्त का विधानमण्डल नई विधायी सत्ता को न तो सृजित कर सकता था और न उसे अपनी हैसियत प्रदान कर सकता था, जो उसी (विधायी शक्ति) ऐक्ट द्वारा स्वयं नहीं बनाई गई है जिस ऐक्ट के माध्यम से स्वयं विधानमण्डल अस्तित्व में है और कूले कृत "कान्स्टीट्यूशनल ला"

1973(12) eILR(PAT) SC 1

के चौथे संस्करण, में पृष्ठ 138 पर इस आशय के अवतरण के प्रति सहानुमोदन निर्देश किया है कि :

> "यह उच्च विशेषाधिकार, इसकी अपनी न कि अन्य व्यक्तियों की प्रज्ञा, निर्णय बद्धि और देशभक्ति के भरोसे पर सौंपा गया है और यदि यह न्यास का निष्पादित करने के बजाय उसका प्रत्यायोजन करता है तो यह कार्य अधिकारातीत होगा।"

60. इस बात पर ध्यान देना संगत है कि लगभग सभी मामलों में प्रत्यायोजन के विरुद्ध तर्क, लार्ड हालडेन के सिद्धान्त पर आधारित किया गया था। किन्तु अत्यधिक विस्तृत प्रत्यायोजन को कायम रखने में वह न्यायालयों के मार्ग में कभी आड़े नहीं आया। लार्ड हालडेन के सिद्धान्त के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, **लास्किन**[1] ने कहा—

> "इस बहु उद्धृत अवतरण ने सांविधानिक बंधन की अपेक्षा सतर्कता की सलाह का काम अधिक किया है.....इस प्रस्थापना ने संसद् द्वारा और किसी प्रान्तीय विधानमण्डल द्वारा, स्वयं अपनी बनाए हुए अथवा अपने नियंत्रणाधीन अभिकरणों को किए गए बड़े से बड़े प्रत्यायोजन को भी किसी प्रकार प्रभावित नहीं किया है; रेग्यूलेशन्स कैमिकल्स वाला मामला (1943) 1 डी० एल० आर० 248; शानन बनाम लोवर मेनलैण्ड डेरी प्रोड्क्टस बोर्ड: (1938) ए० सी० 707 देखिए।"

61. और जहां तक कूले की मताभिव्यक्ति का सम्बन्ध है हमारा यह विचार है कि वे इस अमरीकी सिद्धान्त पर आधारित है कि चूंकि विधानमण्डल जनता का प्रत्यायुक्त है अतः वह उस न्यास का और अधिक प्रत्यायोजन नहीं कर सकता बल्कि उन्हें स्वयं ही इसका निष्पादन करना होता है।

62. हमारा यह विचार है कि **शमा राव बनाम पाण्डिचेरी**[2] वाले मामले के विनिर्णय के सिद्धान्त को उस मामले के तथ्यों तक ही सीमित रहना चाहिए। यह संदेहास्पद हैं कि क्या कोई भी ऐसा सामान्य सिद्धान्त है जो संसद् या राज्य विधानमण्डल को क्रमशः राज्य विधानमण्डल या संसद् द्वारा पारित कोई विधि और उस विधि के भविष्यवर्ती संशोधन को अंगीकृत और उन्हें अपने विधान में समाविष्ट करने से प्रवारित करता हो। कुछ भी हो, जब अंगीकरण किसी विषय

---

[1] देखिए—कैनेडियन बार रिव्यू, जिल्द 34, (1956) पृष्ठ 919 का पादटिप्पण।

[2] (1950) 4 डी० एल० आर० 369.

1973(12) eILR(PAT) SC

पर सम्पूर्ण विधि का नहीं बल्कि उसके किसी उपबन्ध मात्र और उसके भविष्यवर्ती संशोधन का है और वह भी तब जब कि वह विशेष कारण अथवा प्रयोजन के लिए किया गया हो तब ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं हो सकता। **अटर्नी जनरल नोवास्कोशिया ब० अटर्नी जनरल कनाडा** [नोवास्कोशिया इण्टर डैलिगेशन वाला मामला[1]] में कनाडा की सुप्रीम कोर्ट ने यह मत व्यक्त किया कि न तो कनाडा की संसद् (पार्लियामेंट) और न ही उसके किसी प्रान्त का विधानमण्डल एक-दूसरे को क्रमशः ब्रिटिश नार्थ-अमेरिका ऐक्ट और विशेष कर उसकी धाराओं 91 और 92 द्वारा स्वयं को प्रदत्त कोई विधायी प्राधिकार इसके द्वारा, यथास्थिति, संसद् या विधानमण्डल की हैसियत में प्रयुक्त किए जाने के लिए प्रत्यायोजित कर सकते हैं। न्यायालय का यह दृष्टिकोण था कि संसद् और प्रान्तीय विधानमण्डल को प्रदत्त विधायी प्राधिकार अनन्य है और परिणामतः उनमें से कोई भी दूसरे को न तो शक्ति प्रदत्त कर सकता है और न दूसरे से उसे ग्रहण कर सकता है, यद्यपि उनमें से हर एक अधीनस्थ अभिकरणों को प्रत्यायोजित कर सकता है; और ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट द्वारा स्थापित विधायी शक्ति के वितरण में प्रत्यायोजन के माध्यम से (सिवाय उसके जैसा कि धारा 54 में अनुज्ञात किया गया है) परिवर्तन की अनुज्ञा देने का अर्थ यह होगा कि डोमिनियन के अधिकार-क्षेत्र के विषय गवर्नर जनरल की बजाय लैफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा स्वीकृति किए गए विधान में और इसके प्रतिकूल स्वीकृति किए गए विधान में समाविष्ट कर लिये जाएंगे; और, इसके अलावा, इसका यह अर्थ होगा कि एक विधायी निकाय के विचार-विमर्श और निर्णय ऐसे विषयों पर किया गया होगा जिनका उससे कोई सरोकार नहीं है बल्कि जिनसे सरोकार दूसरे विधायी निकाय का है जैसा कि संघटक ऐक्ट में उपबन्ध किया गया है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसे प्रत्यायोजन का परिसंघीय (फेडरल) राज्य के साथ कोई सामंजस्य नहीं हो सकता है।

63. बोरा लास्किन ने "कैनेडियन कान्स्टिट्यूशनल ला" नामक अपनी पुस्तक में इस मामले पर यह कहा है—

> "किन्तु नोवास्कोशिया इन्टर डेलिगेशन वाले मामले द्वारा अभिपुष्ट सिद्धान्त की परिसीमाओं की विवेचना करना महत्वपूर्ण है। समुचित रूप से समझा जाए तो वह मामला संसद् अथवा प्रान्तीय विधानमण्डल को एक के विधिमान्य विधान में दूसरे के भविष्यवर्ती विधिमान्य अधिनियमितियों को निर्देश द्वारा समाविष्ट करने से प्रतिषिद्ध नहीं करता। निर्देश द्वारा इस किस्म के अगाऊ समावेश के दृष्टान्त क्रिमिनल

[1] (1950) 4 डी० एल० आर० 369.

कोड की धारा 534 में उपलब्ध हैं, दाण्डिक कार्यवाहियों में जूरी की अर्हताओं के रूप में ऐसी अर्हताएं नियत करना, जैसी कि "किसी प्रान्त में तत्समय प्रवृत्त विधियों" द्वारा विहित हों; और समरी कन्विक्शन्स ऐक्ट, रिवाइज्ड स्टैट्यूट्स आफ कनाडा, 1960, अध्याय 387 में धारा 3 का "समय-समय पर यथा संशोधित अथवा पुनः अधिनियमित" क्रिमिनल कोड के कतिपय उपबन्ध प्रान्तीय सरसरी दोषसिद्धि विषयक् कार्यवाहियों को लागू करना।"

जहां निर्देशक विधानमण्डल के विधायी प्राधिकार में कोई विस्तार नहीं होता है वहां ऐसा कोई असांविधानिक प्रत्यायोजन नहीं होता जिसका उसने अपने प्रयोजनों के लिए विधिमान्य रूप से कथन किया होता। ब्रिकलो वाले मामले में (1953) ओ० डब्ल्यू एन० 325, 105 कैनेडियन सी० सी 203 (जिसकी अन्य आधारों पर अपील में पुष्टि कर दी गई थी) न्यायाधिपति हडसन ने उसकी प्रशंसा की थी। किन्तु रेगिना **बनाम** फियाल्का (1953) 4 डी० एल० आर० 440, (1953) ओ० डब्ल्यू एन० 596, 106 कैन० सी० सी 197 (सी० ए० लेड) लार्ड जे० ए० प्रोविन्शियल समरी कनविक्शन्स ऐक्ट की विधिमान्यता के प्रश्न को उस दशा में वैसे ही छोड़ दिया था यदि उसका यह अर्थान्वयन किया जाए कि प्रान्तीय कानून के अधिनियमित किए जाने के समय विद्यमान क्रिमिनल ला न केवल कोड के उपबन्ध को समाविष्ट करता है बल्कि उसके पश्चात् पुरःस्थापित उपबन्धों को भी समाविष्ट करता है।"

64. ससम्मान हम यह कहना चाहेंगे कि यह तो विधायी क्षमता पर परिसीमा को अनावश्यक रूप से और अकारण ही स्वीकार कर लेना है तथा इसके लिए औचित्य निर्देशक विधानमण्डल की विधायी नीति के विषय के रूप में ही हो सकता है; देखें लास्किन नोट (1956) 34 कैनेडियन बार रिव्यू 215; किन्तु साथ ही देखें बोर्न नोट, (1956) 34 कैनेडियन बार रिव्यू 500। एक बार यह अवधारित हो जाने पर कि निर्देशक विधानमण्डल अपनी क्षमता के किसी विषय के सम्बन्ध में विधान बना रहा है और यह कि निर्देशित विधानमण्डल भी उसी प्रकार अपनी क्षमता के भीतर अपने प्रयोजनों के लिए, विधान बना रहा है, एक का दूसरे से भविष्यवर्ती अधिनियमितियां उधार लेने का अर्थ निर्देशित विधानमण्डल द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग करना नहीं है जो उसे अन्यथा प्राप्त नहीं थी। रेगिने **बनाम** ग्लिबरी (1963) 1 ओ० आर० 232, 36 डी० एल० आर० (दूसरा) 548 द्वारा इस दृष्टिकोण का पर्याप्त समर्थन होता है।" (बोरा लास्किन कृत "कैनेडियन कांस्टीट्यूशनल ला" तीसरा संस्करण, पृ० 40-41 देखिए)।

1973(12) eILR(PAT) SC 1

65. **अटर्नी जनरल ओण्टेरियों** बनाम **स्कॉट**[1] वाला विनिश्चय ऐसे निर्णय के विरुद्ध की गई अपील में दिया गया था जिसमें ओण्टेरियो रेसीप्रोकल एन्फोर्समेण्ट आफ मेन्टिनेन्स आर्डर्स ऐक्ट, रिवाइज्ड स्टेटयूट्स आफ कैनेडा, 1950 धारा 334 के अधीन कार्य करने का तात्पर्य रखने वाले मजिस्ट्रेट को, निर्दिष्ट निषेध प्रस्ताव को खारिज करने वाला आदेश उलट दिया गया था। ऐक्ट में उस व्यवस्था को कार्यान्वित किया गया था जिसमें निवासी पतियों के ऐसे अनन्तिम भरण-पोषण आदेशों को ओण्टेरियो में प्रवृत्त करने के लिए कुछ अन्य प्रान्त और इंग्लैण्ड पक्षकार हो गए थे जिनके लिए कार्यवाहियां वहीं पर निवासी पत्नियों ने व्यतिकारी अधिकारिता में शुरु कर दी थीं उस ऐक्ट की धारा 5(2) द्वारा, जिस निवासी पति, के विरुद्ध किसी विदेशी आदेश की "पुष्टि" ईप्सित हो, वह बचाव की ऐसी दलील देने का हकदार था जो उसने मूल कार्यवाहियों में उठाई होती यदि वह उसमें पक्षकार होता किन्तु बचाव की कोई अन्य दलील नहीं दे सकता था। उस ऐक्ट की विधिमान्यता के बारे में आक्षेपों में से एक आक्षेप धारा 5(2) के बारे में था और कहा गया था कि वह धारा विधायी प्राधिकार का असांविधानिक प्रत्यायोजन अथवा अधित्याग है।

66. न्यायाधिपति रैण्ड ने, जिनसे न्यायाधिपति सी० जे० कारविन, सी० जे० सी० कैलक और कार्टराइट सहमत थे, यह अभिनिर्धारित किया कि हर एक विधानमण्डल का कार्य पूर्णतः विवेकपूर्ण और दूसरे के कार्य से स्वतन्त्र था, जो ऐसा सम्बन्ध है जिसका प्रत्यायोजन के साथ कोई सामन्जस्य नहीं है और यह कि यह सीमित प्रकार के अंगीकरण का मामला था, क्योंकि इसमें केवल एक ही अधिकार अर्थात् पति और पत्नी के बीच भरण-भोषण का प्राइवेट अधिकार मात्र अन्तर्वलित था : यह कि वह अधिकार हर देश के निवासी को लागू था; यह कि सहायता की बाध्यता दोनों के द्वारा मान्यता प्राप्त थी; यह कि अंगीकरण के तात्विक विषय (प्रतिरक्षा) का आधारों से सम्बद्ध थे। उनका यह दृष्टिकोण था कि किसी दूसरे विधानमण्डल को किसी प्रान्त के लिए सामान्यतः विधियां अधिनियमित करने की अनुज्ञा देने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया था जो प्रकटतः अधित्याग होता। उन्होंने यह कहा कि किसी अन्य अधिकारिता में प्रवृत्त नियमों और प्रक्रिया के समय-समय पर अपनाए जाने का उदाहरण एक्सचैकर कोर्ट का नियम 2 था और प्रान्तीय स्टैट्यूटों (कानूनों) द्वारा क्रिमिनल कोड के बहुत से उपबन्धों का अंगीकरण समरी कन्विक्शन्स ऐक्ट, रिवाइज्ड स्टैट्यूट आफ कैनेडा 1950, अध्याय 379, धारा 3 देखा जा सकता था। विद्वान् न्यायाधीश के अनुसार, विधायी क्षमता के दृष्टिकोण से, प्रक्रिया

[1] (1956) एस० सी० आर० 137.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

और मुख्य विधि के अंगीकरण के बीच कोई अन्तर नहीं है, यह कि हर एक मामले में विधान दूसरे विधानमण्डल द्वारा समय-समय पर बनाए जाने वाले विधान के प्रति निर्देश करके अधिनियमित किया गया था, यह कि उस मामले में अनुपूरक अधिनियमन को चुनौती नहीं दी जा सकती थी; और यह कि यदि प्रान्त ऐसे स्थानीय और सिविल अधिकारों की प्रकृति वाले विषय के सम्बन्ध में वैसी ही शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता तो **हौज** बनाम **दि क्वीन में लार्ड** द्वारा विहित **फिज़गेरालड** के ये बहुचर्चित शब्द कदाचित आडम्बर पूर्ण लगेंगे कि "धारा 92 सीमाओं के भीतर उसकी शक्ति उतनी ही पूर्ण और पर्याप्त है जितनी की इम्पीरियल पार्लियामेण्ट को, अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राप्त है और वह प्रदान कर सकती है।"

67. न्यायाधिपति लाक ने यह कहा कि अधिनियमिति की विधिमान्यता धारा 5(2) पर निर्भर थी जिसके अनुसार (प्रतिरक्षा) उन्हीं बातों तक सीमित थी जिनका आश्रय इंग्लैण्ड में मूल कार्यवाहियों में लिया जा सकता था। रैसिप्रोकल एनफोर्समेण्ट आफ मेन्टिनेन्स आर्डर्स ऐक्ट जिस तारीख को ओनटेरियों में प्रवृत्त हुआ उस तारीख को इंग्लैण्ड की विधि में जो प्रतिरक्षाएं अनुज्ञात थी वे इंग्लैण्ड में उसके पश्चात् पारित विधान द्वारा कम या ज्यादा की जा सकती थी और दलील यह दी गई कि यह ओनटेरियों के निवासियों के सिविल अधिकारों के बारे में कार्यवाही करने की विधानमण्डल की शक्ति उसके प्राधिकार को प्रत्यायोजित करने की कोटि में आता है और यह बात कि यह नहीं कहा जा सकता था **अटर्नी जनरल नोवास्कोशिया** बनाम **अटर्नी जनरल कनाडा**[1] में कनाडा की सुप्रीम कोर्ट के निर्णय द्वारा स्पष्ट कर दी गई थी, किन्तु विद्वान् न्यायाधीश का यह निष्कर्ष था कि यह आक्षेप अभिभावी नहीं हो सकता क्योंकि यह घोषित करना कि इस प्रकृति की कार्यवाहियों में जिस प्रतिरक्षा का अवलम्ब लिया जा सकता है वे ऐसी होंगी जो इग्लैण्ड की विधियों के अधीन समय-समय पर अनुज्ञेय हों, चूंकि ये विधियां प्रान्त की विधियों के रूप में सारतः अपना ली गई और उन्हें घोषित कर दिया गया था। ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट की धारा 92 के शीर्ष (13) के अधीन प्रान्तीय शक्तियों का प्रयोग विधिमान्य था।

68. जहां तक न्यायाधिपति लाक के तर्क की शुद्धता का प्रश्न है उसके लिए बोरा लास्किन के (1956) 34 कैनेडियन बार रेवेयू 215-227 में की टिप्पणी देखें।

---

[1] (1950) 4 डी० एल० आर० 369.

1973(12) eILR(PAT) SC 1

69. हमारा यह विचार है कि संसद् ने अधिनियम की धारा 8(2) (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकार के अन्तर्राज्यिक (इण्टर-स्टेट) विक्रयों पर कर की दर, अन्तर्राज्यिक (इण्टर-स्टेट) विक्रयों के मद्दे समुचित राज्य विधानमण्डल द्वारा नियत दर के अनुसार के विशेष प्रयोजन अर्थात् अन्तर्राज्यिक विक्रयों में कर के अपवंचन को रोकने और एक राज्य और किन्हीं दूसरे राज्यों के निवासियों के बीच प्रभेद को रोकने के लिए नियत की थी। संसद् का यह विचार था कि जब तक राज्यों द्वारा समय-समय पर नियत की गई दर को उस उपखण्ड में विनिर्दिष्ट प्रकार के अन्तर्राज्यिक विक्रयों के लिए नहीं अपनाया जाता तब तक अन्तर्राज्यिक विक्रयों में कर का अपवंचन होगा और साथ ही विभेद भी होगा। 1969 की सिविल अपील संख्या 2547-2549 और 1970 की सिविल अपील संख्या 105-106 में अपने निर्णय में हम उन उद्देश्यों के बारे में पहले ही संकेत कर चुके हैं जिन्हें संसद् स्थानीय विक्रयों पर कर लगाने के लिए समुचित राज्यों द्वारा कर की दर अपना कर प्राप्त करना चाहती थी। और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संसद्, स्थानीय विक्रयों मद्दे समुचित विधानमण्डल द्वारा समय-समय पर नियत की जाने वाली दर का समावेश करने से अन्यथा नियत नहीं कर सकती थी। यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि जहां तक अन्तर्राज्यिक विक्रयों का सम्बन्ध है केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम में धारा 9(2) द्वारा, जहां तब कर के उद्ग्रहण और संग्रहण की प्रक्रिया और शास्तियों के अधिरोपण का भी सम्बन्ध है, समुचित राज्य की विधि को अपनाया है।

70. इस बाबत कोई सन्देह नहीं हो सकता कि संसद् अन्तःराज्यिक विक्रयों मद्दे समुचित राज्य विधानमण्डल द्वारा नियत की गई कर की ऊंची दर अपना कर, धारा 8(2)(ख) के उपबन्धों को निरस्त कर सकती है। यदि संसद् उपबन्ध को निरस्त कर सकती है, तो इस विषय में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती कि संसद् ने अपने विधायी कृत्य का अधित्याग किया है। दर नियत करने के मामले में संसद् अपना नियन्त्रण यथावत् रखती है। दूसरे शब्दों में, जब तक संसद् राज्य विधानमण्डलों द्वारा नियत कर की उच्चतर दर अपना कर धारा 8(2)(ख) के उपबन्धों को निरस्त कर सकती है, तब तक यह अपने विधायी कृत्य का अधित्याग नहीं करती है। जैसा कि पहले कथन किया जा चुका है, इस प्रश्न की बाबत **काब एण्ड कम्पनी लिमिटेड** बनाम **क्राप्प**[1] में प्रिवी कौंसिल ने अभिव्यक्त रूप से विनिश्चित किया है।

---

[1] (1967) 1 ए० सी० 141.

71. हम यह बात जान कर प्रसन्न हैं कि हमारा यह निष्कर्ष कि संसद् ने अधिनियम की धारा 8 (2)(ख) को अधिनियमित करके अपने विधायी कृत्य का अधित्याग नहीं किया है, **रैलिस इण्डिया लिमिटेड** बनाम **आर० एस० जोशी, विक्रय-कर अधिकारी**[1] में गुजरात उच्च न्यायालय के और **टेक चन्द दौलत राय** बनाम **एक्साइज़ एण्ड टैक्सेशन आफिसर, फिरोज़पुर और अन्य**[2] में पंजाब उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के अनुरूप है ।

72. परिणामतः ये अपीलें खर्चे सहित खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

श०/ई०

---

1 (1973) 31 एस० टी० सी० 585.

2 (1972) 29 एस० टी० सी० 585.